मंझन

अस्तर पर छपे मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोदन के दरबार का वह दृश्य, जिसमे तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ—रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं, इसे नीचे बैठा लिपिक लिपिबद्ध कर रहा है। भारत में लेखन-कला का सम्भवतः सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख।

नागार्जुन कोण्डा, दूसरी सदी ई-
सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

भारतीय साहित्य के निर्माता

मंझन

सियाराम तिवारी

साहित्य अकादेमी

Manjhan : A monograph in Hindi by Siyaram Tiwari on medieval sufi poet, Sahitya Akademi, New Delhi (1998) Rs. 25.

प्रथम संस्करण 1998

साहित्य अकादेमी

मुख्य कार्यालय

रवीन्द्र भवन, 35, फ़ीरोज़शाह मार्ग, नयी दिल्ली 110 001

विक्रय विभाग : स्वाति, मन्दिर मार्ग, नयी दिल्ली 110 001

क्षेत्रीय कार्यालय

जीवनतारा बिल्डिंग, चौथी मंज़िल, 23ए/44 एक्स,
डायमंड हार्बर रोड, कलकत्ता 700 053

304-305, अन्ना सालई, तेनामपेट, चेन्नई 600 018

172, मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय मार्ग,
दादर, मुम्बई 400 014

ए.डी.ए. रंगमन्दिर, 109, जे. सी. मार्ग, बंगलौर 560 002

ISBN 81-260-0307-3

मूल्य : पच्चीस रुपये

मुद्रक : सविता प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली 110 032

अनुक्रम

मंझन का काल

मंझन का जीवनकाल सोलहवीं शती ईस्वी के दूसरे दशक से नौवें दशक तक है। यह काल राजनीतिक उथल-पुथल का काल है। 21 अप्रैल, 1526 ई॰ को जब पानीपत की पहली लड़ाई हुई, मंझन किशोर वय के रहे होंगे। बदक्शां, अफ़गानिस्तान, पंजाब, दिल्ली, बिहार और दक्षिण में रणथम्भोर, ग्वालियर और चंदेरी के किलों तक अपने साम्राज्य का विस्तार कर दिसम्बर, 1530 ई॰ में बाबर मर गया और उसका पुत्र हुमायूँ गद्दी पर बैठा। जून, 1539 में चौसा के युद्ध में शेरशाह से हुमायूँ की हार का अनुभव मंझन को दो कारणों से अवश्य हुआ होगा। पहला कारण तो यह है कि मंझन आधुनिक उत्तर प्रदेश के मिर्ज़ापुर ज़िले के चुनार में रहते थे जो चौसा से बहुत दूर नहीं है। चुनार भी हुमायूँ के ही अधीन था जो चौसा की हार के बाद शेरशाह के कब्जे में गया। दूसरा कारण यह है कि मंझन के गुरु शेख़ मुहम्मद गौस बाबर और हुमायूँ से बहुत जुड़े हुए थे। अतः शेख़ मुहम्मद गौस ने हुमायूँ की हार को कष्ट से ही झेला होगा और मंझन भी उससे अप्रभावित नहीं रहे होंगे। 1545 ई॰ में शेरशाह की मृत्यु हो गयी और उसका द्वितीय पुत्र जलाल ख़ाँ उसका उत्तराधिकारी बना जिसने इस्लामशाह नाम धारण किया। इस्लामशाह को भूल से सलीम शाह भी कहा जाता है। स्वयं मंझन ने भी इसी नाम से शाहेवक़्त की प्रशंसा की परिपाटी की रक्षा करते हुए उसका गुणगान किया है। इस्लामशाह में शेरशाह की योग्यता न थी। वह 1553 ई॰ तक ही शासन कर सका। जून, 1555 ई॰ में हुमायूँ ने पुनः राज्य पर अधिकार कर लिया किंतु जनवरी, 1556 ई॰ में उसकी मृत्यु हो गयी। फरवरी, 1556 ई॰ में अकबर गद्दी पर बैठा। नवम्बर, 1556 ई॰ में पानीपत का दूसरा युद्ध हुआ जिसमें अकबर की विजय हुई। अक्टूबर, 1605 ई॰ तक अकबर सिंहासन पर रहा।[1]

इस प्रकार मंझन के जीवन का लगभग उत्तरार्ध अकबर के शासनकाल में बीता।

1. वी. ए. स्मिथ, *द ऑक्सफ़ोर्ड हिस्ट्री ऑफ इंडिया,* चतुर्थ संस्करण के आधार पर।

सब मिलाकर, मंझन का काल शेरशाह, हुमायूँ और अकबर का काल है।

यह काल भारतवर्ष के इतिहास में उत्तर-मध्यकाल के अंतर्गत आता है। भारतीय इतिहास का उत्तर-मध्यकाल पानीपत की पहली लड़ाई 1526 ई॰ से आरम्भ होता है। यहाँ से मुसलमान शासकों के दृष्टिकोण में एक स्पष्ट अंतर दिखाई पड़ता है। 1526 ई॰ के पूर्व दिल्ली के मुसलमान शासक अपने को केवल सुलतान कहते थे और खलीफा की श्रेष्ठता को स्वीकार करते थे। किंतु बाबर और उसके वंशज किसी बाहरी शक्ति की प्रधानता को स्वीकार नहीं करते थे। उन्होंने अपने को पादशाह कहा और ऐसे विरुद धारण किये जो ख़लीफ़ाओं ने धारण किये थे। इस प्रकार सम्राट् की प्रतिष्ठा पहले से कहीं अधिक हो गयी और वह भारत एवं फ़ारस की प्राचीन परम्परा के अनुसार ईश्वर का अंशावतार समझा जाने लगा।

अत्तर-मध्यकाल की दूसरी बड़ी विशेषता धर्मनिरपेक्षता की भावना का बीजवपन है। 1526ई॰ के पूर्व अधिकांश सुलतानों का दृष्टिकोण साम्प्रदायिक रहता था। उनका उद्देश्य केवल मुसलमानों के हितों की रक्षा करना होता था और हिंदुओं के ऊपर उन्होंने अनेक प्रकार के राजनीतिक, नागरिक और धार्मिक प्रतिबंध लगाये थे। 1526 ई॰ के बाद इस नीति में परिवर्तन प्रारम्भ हो गया। बाबर ने राजपूतों एवं अफ़गानों को पराजित किया, इसमें कोई संदेह नहीं, परंतु वह उनका पूर्ण विनाश करने के स्थान पर उनको अपने साम्राज्य एवं राजवंश का सेवक बनाना चाहता था। युद्धों के कारण इस नीति को कार्यान्वित करने का अवसर उसको नहीं मिला तथापि इस नीति के बीजारोपण का श्रेय तो उसको इतिहासकारों ने दिया ही है। अकबर के समय यह नीति उभरकर सामने आयी। सोलहवीं शती से सामाजिक जीवन के विविध क्षेत्रों में हिंदू और मुसलमान निकट आने लगे और धार्मिक सहिष्णुता की भावना पनपने लगी।[2] मंझन के काव्य में इस भावना की स्पष्ट झलक मिलती है।

मंझन का काल हिन्दी-साहित्य के इतिहास में भी एक विशिष्ट स्थान रखता है। मंझन का जीवनकाल हिन्दी-साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल के अंतर्गत आता है। इस समय में ज्ञानमार्गी निर्गुण भक्तिधारा के सींगा (1519-1659 ई॰), लालदास (1540-1648 ई॰) और दादूदयाल (1544-1603 ई॰) अपनी रचनाएँ कर रहे थे। रामभक्ति काव्य-परम्परा के सर्वश्रेष्ठ कवि तुलसीदास (1532-1623 ई.) उसी समय अपना रामकाव्य रच रहे थे और उनकी अन्यतम कृति *रामचरितमानस* (1574 ई॰)

---

2. अवध बिहारी पांडेय, *उत्तर मध्यकालीन भारत,* (इलाहाबाद, 1971), पृ. 22-24 के आधार पर।

की ख्याति भी वृद्ध मंझन तक पहुँची होगी। अष्टछाप के सारे कवि सूरदास (1478-1583 ई.), कुम्भनदास (1468-1583 ई.), परमानंददास (1493-1583 ई.), कृष्णदास (1496-1578 ई.), नंददास (1533-1583 ई.), गोविंद स्वामी (1505-1585 ई.), छीतस्वामी (1515-1585 ई.) और चतुर्भुजदास (1530-1585 ई.) मंझन के प्रायः समकालीन थे। राधावल्लभ सम्प्रदाय के हित हरिवंश (1502-1552 ई.) और हरिराम व्यास (जन्म 1492 ई.) भी उसी समय कृष्णलीला का गान कर रहे थे। महान् संगीतज्ञ और तानसेन के गुरु स्वामी हरिदास (1478-1578 ई.) सखी-भाव से कृष्णलीला का गान कर रहे थे। चैतन्य महाप्रभु (1486-1533 ई.) के कीर्तन की गूँज-अनुगूँज युवक मंझन के कानों तक भी पहुँची होगी, ऐसा अनुमान असंगत नहीं कहा जा सकता। चैतन्य सम्प्रदाय के सूरदास मदनमोहन (जन्म 1513 ई. के लगभग) गदाधर भट्ट (रचनाकाल 1540-1565 ई.) और चंद्रगोपाल (1515 ई. के लगभग) तो मंझन के समकालीन ही थे। सम्प्रदाय-निरपेक्ष कृष्णभक्त कवियों में मीरांबाई (1504-1558/1563 ई.) उसी समय अपनी पदावलियाँ रच रही थीं और रसखान तो उनके समसामयिक ही रहे होंगे।

मंझन के काल में भक्तिकाव्येतर रचनाएँ भी हो रही थीं। उस समय वीरकाव्य की परम्परा भी चल रही थी। ऐसी रचनाओं में नल्लसिंह द्वारा रचित *विजयपाल रासो* (1543 ई.) उसी समय की कृति है। छीहल कवि अपना नीतिकाव्य उसी समय रच रहे थे। अकबरी दरबार के कवियों में पृथ्वीराज, मनोहर कवि, महापात्र नरहरि, बीरबल, गंग, तानसेन, रहीम की रचनाएँ सामने आने लगी होंगी। यही नहीं, मंझन के युग में रीतिकाव्य की रचना भी प्रारम्भ हो गयी थी। कृपाराम की *हिततरंगिनी* (1541 ई.) और नंददास की *रसमंजरी* (1550 ई.) तो मंझन के जीवनकाल के मध्य में आ ही गयी थी, केशवदास की *रसिकप्रिया* (1591 ई.) की रचना भी मंझन के जीवनकाल में ही हो गयी थी।

इस प्रसंग के अंत में यह देखने योग्य है कि स्वयं मंझन जिस परम्परा के कवि थे, उसका क्या हाल था। मंझन निर्गुण भक्तिकाव्य की प्रेममार्गी शाखा के अंतर्गत आते हैं और इनकी *मधुमालती* (1545 ई.) प्रेमाख्यान-परम्परा की कृति है। इस परम्परा के इनके समसामयिक कवि हैं *माधवानल कामकंदला* (1527 ई.) के रचयिता गणपति, *पदमावत* (1540 ई.) के प्रसिद्ध कवि जायसी, *माधवानल कामकंदला* चौपई (1556 ई.) के रचनाकार कुशललाभ, *प्रेमविलास प्रेमलता की कथा* (1556 ई.) के रचयिता

जटमल, *माधवानल कामकंदला* (1584 ई.) के लेखक आलम और *छिताईवार्ता* (1590 ई.) के प्रणेता नारायण दास।[3]

मंझनकालीन साहित्यिक वायुमंडल पर विहंगम दृष्टि डालने के उपरांत निष्कर्ष-स्वरूप कहा जा सकता है कि तत्कालीन हिन्दी-साहित्याकाश में विभिन्न स्वर गूँज रहे थे जिनमें सबसे पुरज़ोर स्वर कृष्णभक्ति का था। किंतु उसके बाद यदि किसी का स्थान आता है तो वह मंझन की अपनी काव्य-परम्परा का ही आता है। यह एक संयोग ही है कि सगुण और निर्गुण, दोनों भक्तिकाव्यों की जिस धारा में प्रेम का प्राधान्य है उन्हीं का स्वर उस युग में प्रबल था।

---

3. नगेंद्र, *हिन्दी साहित्य का इतिहास,* (नयी दिल्ली, 1973) के आधार पर इन कवियों का काल स्वीकार किया गया है।

मंझन का जीवनवृत्त[1]

जहाँगीरकालीन एक इतिहासकार मुहम्मद कबीर द्वारा लिखित *अफ़सानाए बादशाहान* के अनुसार मंझन का पूरा नाम मीर सैयद मंझन अथवा मीर सैयद मंझन राजगिरी था। उनके पिता का नाम अब्दुल्लाह काजी खैरुद्दीन शरीफ़ था। उनके पूर्वज बल्ख से भारत आकर गौड़ देश (बंगाल) में अवस्थित लखनौती नगर में बस गये थे। यहीं पर मंझन का जन्म हुआ था। मंझन की माता दिल्ली के एक प्रतिष्ठित व्यक्ति काजी समाउद्दीन देहलवी की पुत्री थीं। मंझन को उसमान नाम का एक पुत्र भी था। उसमान सूफ़ी संतों के विषय में काफ़ी जानकारी रखते थे।

मंझन के प्रारम्भिक गुरु सैयद ताजुद्दीन बुखारी थे। वे भारत आकर शत्तारी सम्प्रदाय के प्रसिद्ध सूफ़ी संत शेख़ मुहम्मद गौस के शिष्य बन गये। उनकी सिफ़ारिश पर शेख़ मुहम्मद गौस ने मंझन को भी अपना शिष्य बना लिया। मंझन ने उनकी महत्ता का वर्णन *मधुमालती* के आरम्भ में बहुत विस्तार के साथ किया है। शेख़ मुहम्मद गौस एक महान् संत होने के साथ-साथ अपने समय के एक प्रभावशाली राजनीतिक व्यक्ति भी थे। बाबर की उन पर बड़ी श्रद्धा थी और उन्हीं की आज्ञा से उसने हुमायूँ को राजगद्दी पर बैठाया था। हुमायूँ को भी उनपर बड़ा विश्वास था और उनको वह अपना परम हितैषी समझता था। बदायूंनी ने अपने इतिहास-ग्रंथ *मुंतखाबुत तवारीख़* में लिखा है कि गौस ने चुनार की पहाड़ियों में बारह वर्षों तक तपस्या की। मंझन ने भी उनकी इस कठोर तपस्या का उल्लेख *मधुमालती* के इक्कीसवें छंद में किया है।

मंझन ने *मधुमालती* के भूमिका-भाग में चौतीसवें-पैंतीसवें छंद में चर्नाढी नगर का वर्णन किया है। निश्चय ही मंझन ने इसी नगर में रहकर *मधुमालती* की रचना की होगी अन्यथा इस नगर के वर्णन का कोई औचित्य नहीं था। चर्नाढी को वर्तमान उत्तरप्रदेश के मिर्ज़ापुर ज़िले का चुनार माना गया है। मंझन ने यहीं शेख़ मुहम्मद गौस

1. श्याममनोहर पांडेय, *सूफ़ी-काव्य-विमर्श* (आगरा, 1968) के आधार पर।

से दीक्षा ली होगी। चुनार पर हुमायूँ ने अधिकार किया था। फिर यह शेरशाह के अधिकार में चला गया। अकबर के सम्राट् होने पर यह उसके अधीन हुआ।

मंझन का सम्बंध शेरशाह के पुत्र और उत्तराधिकारी इस्लामशाह (सलीमशाह) से था जो 952 हिजरी में शेरशाह की मृत्यु के बाद गद्दी पर बैठा था। मंझन ने शाहेवक्त के रूप में दसवें से तेरहवें छंद तक उसकी प्रशंसा लिखी है।

मंझन की मृत्यु 1001 हिजरी में अस्सी वर्ष की अवस्था में मालवा में हुई।

मंझन की रचना

मंझन की एकमात्र उपलब्ध रचना *मधुमालती* है। इसके रचनाकाल की सूचना कवि ने इस प्रकार दी है :

सन नौ सै बावन जब भए। सती पुरुख कलि परिहरि गए।
तब हम जिय उपजी अभिलाखा। कथा एक बांधउं रस भाखा।

इसके अनुसार *मधुमालती* की रचना 952 हिजरी में हुई। शेरशाह की मृत्यु भी 952 हिजरी में ही हुई थी। लगता है कि 'सती पुरुख कलि परिहरि गए' में उसीका संकेत है।

मधुमालती के विषय में स्यवं मंझन का मत जानने योग्य है। उन्होंने इसके सम्बन्ध में पहली बात यह कही है कि यह एक प्रेमकथा है। ऊपर उद्धृत छंद के अंतिम चरण में वे स्पष्ट कहते हैं कि भाषा में एक रसकथा बाँधने की इच्छा हुई। "रस कथा" से उनका तात्पर्य प्रेमकथा से ही है। इसीलिए वे दूसरी बात यह कहते हैं कि प्रेम की अभिलाषा रखनेवाला उनका लक्ष्यीभूत श्रोता है। वे कहते हैं : "सुनहु कान दै पेम अभिलाषी"।

मधुमालती का प्रतिपाद्य प्रेमकथा होने के कारण स्वभावतः ही इसमें रसराज शृंगार रस को प्रधानता मिली है।·कवि कहता है :

रस अनेग सयंसार कर सुनहुं रसिक दै कान।
जो सभ रस महं राउ रस ता कर करौं बखान।।

अर्थात् संसार में तो अनेक रस हैं किंतु जो सभी रसों का राजा है उस (शृंगार) रस का मैं यहाँ वर्णन करता हूँ। कवि के अनुसार *मधुमालती* की यह तीसरी विशेषता है। *मधुमालती के सम्बन्ध* में वे चौथी बात यह कहते हैं कि इसमें प्रसाद गुण को सर्वोपरि रखा गया है : "मैं छाड़ेउं गुन कर परसादू"। अर्थात् मैंने प्रसाद गुण के निमित्त अन्य गुणों का त्याग कर दिया है। स्पष्ट है कि अपनी कृति को लोकप्रिय बनाने के लिए ही उन्होंने ऐसा किया। तात्पर्य यह है कि मंझन ने प्रेम की अभिलाषा रखनेवालों के लिए प्रसाद गुण-सम्पन्न शृंगार रसयुक्त एक प्रेमकथा के रूप में *मधुमालती* की रचना की।

मंझन-कृत *मधुमालती* की चार पांडुलिपियाँ उपलब्ध हैं : (1) रामपुर के नवाब साहब के पुस्तकालय में सुरक्षित फ़ारसी लिपि में लिखित प्रति जिसका प्रतिलिपि-काल 1132 हिजरी है। इसकी एक प्रतिलिपि भारत कला भवन, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी और माइक्रोफ़िल्म प्रति राष्ट्रीय अभिलेखागार, नयी दिल्ली में सुरक्षित है। (2) भारत कला भवन, वाराणसी में सुरक्षित फ़ारसी लिपि में लिखित प्रति जो आदि, मध्य और अंत में त्रुटित है। (3) माधोदास द्वारा सं॰ 1644 में लिखित प्रति जो भारत कला भवन, वाराणसी में सुरक्षित है और अत्यंत त्रुटित है। इसकी सं॰1999 में की हुई एक प्रतिलिपि भी वहीं सुरक्षित है। (4) सं॰ 1744 में लिखित एकडला, ज़िला फतेहपुर से प्राप्त प्रति जो अब भारत कला भवन, वाराणसी में सुरक्षित है।

सम्प्रति *मधुमालती* के दो प्रकाशित संस्करण उपलब्ध हैं : डॉ॰ शिवगोपाल मिश्र द्वारा सम्पादित और हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी से प्रकाशित तथा डॉ॰ माता प्रसाद गुप्त द्वारा सम्पादित और मित्र प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद द्वारा 1961 ई॰ में प्रकाशित। डॉ॰ शिवगोपाल मिश्र ने केवल एकडलावाली प्रति को आधार बनाया है जबकि डॉ॰ माता प्रसाद गुप्त ने उपरि उल्लिखित सभी पांडुलिपियों का उपयोग किया है। यही कारण है कि डॉ॰ गुप्त का संस्करण अधिक प्रामाणिक और पूर्ण है। डॉ॰ गुप्त के संस्करण में सम्पादित पाठ और भूमिका के साथ-साथ अर्थ दिया गया है और पुस्तक के अंत में व्युत्पत्ति-निर्देश-पूर्वक शब्दानुक्रमणी भी दी गयी है।

मधुमालती दोहे और चौपाई छंदों में लिखी गयी है। पाँच-पाँच चौपाइयों पर एक दोहे का क्रम रखा गया है। अंतिम पाँच चौपाइयों के बाद दो दोहे हैं। पाँच चौपाई और एक दोहा को एक छंद मानकर डॉ॰ माताप्रसाद गुप्त वाले संस्करण में 538 इस प्रकार के छंद अंकित हैं। अंतिम दोहे को एक स्वतंत्र छंद मानकर उसकी संख्या 539 दी गयी है। इस तरह डॉ॰ गुप्त द्वारा सम्पादित *मधुमालती* में कुल 539 छंद हैं।

मधुमालती की विषयवस्तु

कथासार

मधुमालती में दो प्रेम-कथाएँ हैं : एक मनोहर और मधुमालती की तथा दूसरी ताराचंद और पेमां की। मनोहर कनैगिरी के राजा सूरजभान का पुत्र था। वह जब बारह वर्ष का हुआ तो राजा ने उसका राज्याभिषेक कर दिया। एक दिन कुछ परदेसी नर्तक उसके दरवार में आये। उनका नृत्य आधी रात तक चला। नृत्य के वाद राजकुमार जब गाढ़ी निद्रा में सो रहा था तो कुछ अप्सराओं ने उसे देखा और शय्या-समेत उसे उठाकर महारस नगर के राजा विक्रमराज की कन्या मधुमालती की शय्या के पास लाकर रख दिया। अप्सराएँ मनोहर और मधुमालती को सोया छोड़कर लखराउं देखने चली गयीं। नींद टूटने पर मनोहर ने सोयी हुई मधुमालती को देखा। मनोहर मधुमालती के सौंदर्य पर मुग्ध हो गया और उसके हृदय में पूर्व की प्रीति अंकुरित हो गयी। इसी समय मधुमालती जग गयी और उसने राजकुमार से उसका परिचय पूछा। राजकुमार ने अपना परिचय देने के बाद मधुमालती से उसका परिचय पूछा। मधुमालती ने जब अपना परिचय दिया तो मनोहर उसके प्रेम से अभिभूत होकर अचेत हो उसके चरणों में गिर पड़ा। मधुमालती ने उसे होश में लाकर उससे अचेत हो जाने का कारण पूछा। मनोहर ने कहा कि जिस दिन विधाता ने तुम्हारी सृष्टि की उसी दिन से मैं तुम्हारा प्रेमी हूँ और तुम्हारे वियोग का भार वहन कर रहा हूँ; मैं तुमसे सर्वथा अभिन्न हूँ; मैं शरीर हूँ और तुम प्राण हो; मैं तो अबतक विना जीव के ही जीवन बिता रहा था, आज ही जीव शरीर में वापस आया है। मधुमालती ने जब यह बात सुनी तो उसे भी पूर्व प्रीति का स्मरण हो आया और दोनों प्रेम के माध्यम से अभिन्न हो गये। मधुमालती ने मनोहर को आश्वासन दिया कि अब हम दोनों को कोई अलग नहीं कर सकता है। दोनों ने प्रेम की शपथ ली और परस्पर मुद्रिकाएँ वदलीं। दोनों तन्मय होकर मिले और फिर शय्या वदलकर सो गये। अप्सराओं ने शय्या समेत मनोहर को उसके घर वापस पहुँचा दिया।

मधुमालती अलसाकर सोयी हुई थी तो सखियां ने उसको जगाया और उसकी

अस्त-व्यस्त दशा का कारण पूछा। मधुमालती ने सारा वृत्तांत बताया और अपनी असह्य विरह-वेदना प्रकट की।

इधर मनोहर जब जगा तो वह भी मधुमालती के विरह में व्याकुल हो उठा। उसकी यह दशा देखकर सहजा नामक धाय ने इसका कारण पूछा तो मनोहर ने सारी कथा सुना दी और कहा कि मधुमालती को प्राप्त करने के लिए वह प्राणों की बाज़ी लगा देगा। राजा के एक महता (महामात्य) ने उसे बहुत समझाया, पर मनोहर पर इसका कुछ असर न पड़ा। राजा-रानी को जब यह बात मालूम हुई तो वे मनोहर के चरणों में गिर पड़े और अपनी वृद्धावस्था की ओर संकेत करते हुए कहा कि वह उन्हें छोड़कर न जाय। किंतु मनोहर ने उनकी एक न सुनी।

मनोहर दस परिग्रहों के साथ योगी के वेष में मधुमालती की खोज में निकल पड़ा। चलते-चलते वे सब समुद्र के किनारे पहुँचे जहाँ वे सब जलयान पर चढ़े। चार मास तक समुद्र में चलते रहने के बाद जलयान भँवर में पड़कर डूब गया। मनोहर के सारे परिग्रह तो डूब गये किंतु मनोहर को समुद्र की एक लहर ने किनारे पर डाल दिया। किनारे पर सघन वन था। मनोहर उसी में चल पड़ा। चलते-चलते वह ऐसे स्थान पर पहुँचा जहाँ एक चौखंडी थी और जिसके भीतर एक राजकुमारी सोयी हुई थी। राजकुमारी जब जगी तो दोनों में परिचय का आदान-प्रदान हुआ। राजकुमारी ने बताया कि मैं चितबिसराउं नगर के राजा चित्रसेन की कन्या पेमां हूँ और अंबराई में सखियों के साथ खेलते समय एक राक्षस मुझे यहाँ उठा लाया है। राक्षस का नाम सुनकर मनोहर वहाँ से चलने को हुआ तो पेमां उसके पैरों पर गिर पड़ी और उसने कहा कि राक्षस के आने में अभी समय है, मैं आपको अपनी वार्ता सुनाये विना जाने नहीं दूँगी। मनोहर ने अपने देशादि का परिचय दिया, उस रात्रि की घटना सुनायी और बताया कि वह अपनी प्रेमिका मधुमालती की खोज में निकला है।

पेमां ने बताया कि मधुमालती तो मेरी बाल-सखी है और मधुमालती की माता प्रत्येक मास की द्वितीया तिथि को उसे लेकर मेरे घर आती रही है, यदि तुम मेरे घर के लोगों के पास जाओ तो वे लोग मधुमालती से तुम्हें मिला देंगे। मनोहर यह सुनकर प्रफुल्लित हो उठा और उसने कहा कि पेमां अब तुम मेरी बहन हुईं, मैं तुम्हें छोड़कर नहीं जा सकता। मनोहर राक्षस को मारकर पेमां को लेकर चितबिसराउं नगर आया। पेमां के पिता चित्रसेन यह समाचार जानकर बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने मनोहर का बड़ा सम्मान किया। चार दिनों के बाद मनोहर ने पेमां से विदा लेकर मधुमालती की खोज में जाना चाहा तो पेमां ने कहा कि दूसरे ही दिन द्वितीया तिथि है, तुम्हारी यहीं मधुमालती से भेंट हो जायेगी। मनोहर वहाँ रह गया। दूसरे दिन मधुमालती आयी। पेमां ने चित्रसारी में मनोहर और मधुमालती का मिलन कराया। दोनों ने एक-दूसरे

को अपना विरह सुनाया। मनोहर ने उसे अधरामृत पान कराने का अनुरोध किया। मधुमालती ने कहा कि जब तक हम लोगों का धार्मिक रीति से विवाह नहीं हो जाता तब तक हमलोगों में सुरत-सुख न हो। मनोहर ने इसे स्वीकार किया। तब मधुमालती उससे लिपटकर सो रही। जब मधुमालती को लौटने में बहुत देर हुई तो उसकी माता रूपमंजरी चिंतित होकर उसे खोजती हुई चित्रसारी में जा पहुँची। वहाँ वह मधुमालती और मनोहर को लिपटकर सोते हुए देखकर बहुत क्रुद्ध हुई और उसने पेमां को भी इसके लिए बहुत बुरा-भला कहा जो मधुमालती को वहाँ ले गयी थी। पेमां ने दोनों का प्रेम-प्रसंग रूपमंजरी को बताया और कहा कि दोनों का प्रेम निष्कलुष है। उसने रूपमंजरी को मनोहर का परिचय भी दिया। रूपमंजरी आश्वस्त हुई और उसने दोनों को अलग कराकर सुषुप्त मनोहर को कनैगिरी और सुपुप्ता मधुमालती को अपने घर भिजवाया। पेमां की माता मधुरा से विदा लेकर रूपमंजरी स्वयं भी अपने घर आ गयी। जब मनोहर जगा तो मधुमालती को न पाकर व्याकुल क्रंदन करने लगा और पुनः मधुमालती की खोज में निकल पड़ा। इधर मधुमालती जगी तो वह भी विरहाकुल होकर बिलखने लगी। रूपमंजरी ने मधुमालती को बहुत समझाया पर मधुमालती पर जब इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा तो उसने मंत्र पढ़कर मधुमालती के ऊपर छींट दिया जिससे मधुमालती पक्षी होकर उड़ गयी। मधुमालती के पक्षी होकर उड़ जाने के बाद रूपमंजरी बहुत पछताने लगी और राजा भी बहुत दुःखी हुए।

पक्षी होकर मनोहर को खोजती हुई मधुमालती की दृष्टि पौनेरिगढ़ के ताराचंद पर पड़ी जिसकी आकृति मनोहर से मिलती-जुलती थी। पक्षी-रूपिणी मधुमालती उसके प्रासाद पर जा बैठी। ताराचंद उस पक्षी को देखकर मुग्ध हो गया और उसने उसे जाल में पकड़ कर सोने के पिंजड़े में डाल दिया। ताराचंद ने उसके सामने पक्षियों के खाने योग्य समस्त प्रकार के पदार्थ रखे किंतु तीन दिनों तक पक्षी ने कुछ नहीं खाया। तब ताराचंद ने इसका कारण पूछा। उत्तर में मधुमालती ने अपनी सारी कथा सुना दी। मनोहर ने उसका उद्धार करने का निश्चय किया। वह अपने सुहृदों को साथ लेकर पिंजड़ा लिये हुए महारस नगर पहुँचा। राजा और रानी मधुमालती के आने का समाचार पाकर दौड़ते हुए आये और ताराचंद को घर ले गये। वहाँ रानी ने मंत्र पढ़कर पक्षी पर जल छींटा जिससे मधुमालती अपने पूर्व रूप में आ गयी। राजा-रानी ने प्रसन्न होकर मधुमालती को ताराचंद को देने की इच्छा प्रकट की किंतु ताराचंद ने कहा कि दोनों में भाई-बहन-सम्बन्ध की वचनबद्धता हो चुकी है, मधुमालती को तो यदि मनोहर मिल जाता तभी उसे सुख होता।

राजा-रानी ने पेमां के पास पत्रिका भेजी। मधुमालती ने भी अपनी विरह-व्यथा का वर्णन कर पत्रवाहक के द्वारा पेमां को संदेश भेजा कि वह मनोहर से उसकी व्यथा

कहे और मनोहर से उसे मिलाये। जिस समय पेमां पत्र प्राप्त कर रही थी और संदेश सुन रही थी उसी समय मनोहर योगी-वेष में वहाँ पहुँचा। पेमां ने उसे मधुमालती का संदेश कहा। फिर पेमां ने राजा-रानी को उनकी पत्रिका का उत्तर देते हुए लिखा कि यदि वे लोग मधुमालती का विवाह मनोहर से करना चाहते हैं तो निकट आ जायें। यह संवाद पाकर सबको प्रसन्नता हुई। विक्रमराज ने मधुमालती एवं रानियों को लेकर प्रस्थान किया और दस दिनों तक चलकर सब डोरियाधरपानी पहुँचे। वहीं चित्रसेन और पेमां को बुलाया गया। एक शुभ तिथि निश्चित कर मनोहर के साथ मधुमालती का विवाह कर दिया गया। विवाह के बाद मनोहर और मधुमालती मिले एवं सुरत-सुख प्राप्त किया।

मनोहर दूसरे दिन ताराचंद के पास गया और उसने कृतज्ञता प्रकट करते हुए कुछ दिनों तक उसके साथ रहने का प्रस्ताव किया। तदनुसार दोनों साथ-साथ रहने लगे।

एक दिन मानेहर और ताराचंद शिकार खेलने गये। इधर पेमां और मधुमालती चित्रसारी में झूला झूलने लगीं। मनोहर और ताराचंद जब शिकार से लौटे तो घर में पेमां और मधुमालती को न पाकर चित्रसारी की ओर चले गये। ताराचंद की दृष्टि झूले पर पेंग भरती हुई पेमां पर पड़ी। पेमां का आंचल उड़ रहा था और उसके उरोज दिख रहे थे। उसके उरोजों पर दृष्टि पड़ते ही ताराचंद मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। मनोहर और मधुमालती ताराचंद को राजमंदिर में ले आये। मनोहर ने जब उसकी मूर्च्छा का रहस्य जाना तब उसने चित्रसेन से मिलकर पेमां और ताराचंद के विवाह का प्रस्ताव रखा। चित्रसेन सहर्ष तैयार हो गये और एक शुभ लग्न में पेमां और ताराचंद का विवाह हो गया। रात्रि में दोनों सुख-शय्या में मिले और प्रथम समागम का सुख प्राप्त किया।

वर्षा ऋतु भर मनोहर और ताराचंद वहाँ रहे। फिर दोनों ने विदा ली। ताराचंद ने मानगढ़ और मनोहर ने कनैगिरी के लिए प्रस्थान किया। दो वर्षो में मनोहर कनैगिरी पहुँचा। जब लोगों को मनोहर के लौटने का संवाद मिला तो नगर में बधावा बजने लगा। घर आकर मनोहर और मधुमालती ने माता-पिता का चरण-स्पर्श किया।

विषयवस्तु की विशेषताएँ

मधुमालती में दो प्रेमकथाएँ हैं : एक मनोहर और मधुमालती की तथा दूसरी ताराचंद और पेमां की। पाठक को ऐसा अनुभव होता है कि यदि पेमां और ताराचंद का विवाह न होता तो कथा में कुछ रिक्तता रह जाती। मनोहर और मधुमालती का परिणय सम्पन्न कराने में ताराचंद और पेमां ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। पेमां ने ही मनोहर को मधुमालती का पता बताया था और उससे मिलन कराया था। फिर

मधुमालती को उसकी माता ने जब पक्षी बना दिया था तो ताराचंद ने ही उसका उद्धार कराया था। इस तरह मनोहर और मधुमालती का विवाह हो जाता और ताराचंद तथा पेमां यों ही रह जाते तो पाठक को यह अच्छा नहीं लगता। मंझन ने पाठक की इस भावना का ख़याल किया है और यह कथानक-निर्माण की उनकी सूझ का परिचायक है।

मधुमालती की विषयवस्तु के सम्बन्ध में दूसरा ध्यातव्य तथ्य यह है कि कवि ने कथा आरम्भ करने के पूर्व एक लम्बी भूमिका प्रस्तुत की है। यह भूमिका 43 छंदों तक चली है। इसके अंतर्गत सबसे पहले छह छंदों में विधाता के गुणों का वर्णन हुआ है। सातवें और आठवें छंद में कवि ने सूचना दी है कि विधाता ही शरीर धारण कर मुहम्मद के रूप में प्रकट हुआ, मुहम्मद मूल हुए और समस्त संसार उनकी शाखा हुआ। नवें छंद में कवि ने मुहम्मद के उत्तराधिकारी चार ख़लीफ़ाओं अबूबक्र, अमर, उसमान और अलीसिंह की वार्ता सुनायी है। दसवें से लेकर तेरहवें छंद तक शाहे वक़्त सलीम शाह सूर जो शेरशाह सूर का पुत्र था और शेरशाह के मरणोपरांत 1545 ई. में शासक बना था, की स्तुति की गयी है। चौदहवें से लेकर इक्कीसवें छंद तक मंझन ने अपने गुरु शेख़ मुहम्मद गौस का गुण-गान किया है। बाइसवें और तेइसवें छंद में कवि ने एक खिज्र ख़ाँ नाम के वीर सरदार का वर्णन किया है जो बादशाह की दाहिनी भुजा के समान था। चौबीस, पच्चीस और छब्बीस, तीन छंदों में कवि ने वाणी की महिमा कही है। सत्ताइसवें से लेकर इक्कतीसवें छंद तक कवि ने प्रेम और विरह की व्यापकता का वर्णन किया है। कवि ने कहा है कि सबसे पहले प्रेम की उत्पत्ति हुई, उसके बाद सारी सृष्टि उत्पन्न हुई। कवि ने यह भी कहा है कि सृष्टि के मूल में विरह है। बत्तीसवें और तैंतीसवें छंद में भगवान् के निर्गुण रूप में ध्यान केंद्रित करने को कहा गया है। चौंतीस और पैंतीस, दो छंदों में कवि ने चरनाढ़ी नगर का वर्णन किया है जो आधुनिक मिर्ज़ापुर ज़िले का चुनारगढ़ है और जो मंझन का स्थान था। छत्तीस, सैंतीस, और अड़तीस, तीन छंदों में कलि-काल का वर्णन है। उनचालीवें से तैंतालीसवें छंद तक *मधुमालती* के रचनाकाल और विषय के सम्बन्ध में बताया गया है। यहाँ मंझन के कवि-व्यक्तित्व पर प्रकाश पड़ता है। उन्होंने पंडितों से अपनी रचना सुनने की प्रार्थना की है और कहा है कि मूर्खों की उन्हें चिंता नहीं है :

पंडित सुनु विनती यह मोरी।
विनवौं पाय लागि कर जोरी।

....

जहाँ न अच्छर जुरै संवारहु।
भलया भए भल मंद बिचारहु।

मुरुख जौ रे उछेदहि तेहि क नाहिं मोहि सोच।
धनि जग ताकर औतरव अरथ लाइ गह पोच।।

उन्होंने बहुत विश्वासपूर्वक कहा है कि पंडित मुझे दोष नहीं देगा और मूर्ख से मुझे कुछ प्राप्त नहीं होगा :

पंडित मोहि न दोस लगाइहि।
मूरुख सेउं पै किच्छु न पाइहि।

मंझन यहाँ विद्यापति की याद दिलाते हैं जिन्होंने *कीर्तिलता* के विषय में विश्वासपूर्वक कहा था :

वालचंद विज्जावइ भासा,
दुहु नहिं लग्गइ दुज्जन हासा।
ओ परमेसर हरसिर सोहइ,
ई निच्चइ नाअर मन मोहइ।।

तैंतालीसवें छंद में पाठकों को सावधान करते हुए कथा के आरम्भ करने की घोषणा करते हैं :

अंब्रित कथा कहौं अब गाई।
रसिक कान दै सुनहु सोहाई।

चौवालीसवें छंद में कथा आरम्भ करते हुए वे कहते हैं कि यह कथा द्वापर युग से चली आ रही थी जिसे कलियुग में मैं भाषाबद्ध कर रहा हूँ :

आदि कथा द्वापर चलि आई।
कलिजुग महं भाखा कै गाई।

यह *मधुमालती* की बड़ी उपयुक्त भूमिका है। कवि ने एक भी अनावश्यक प्रसंग का स्पर्श नहीं किया है। एक प्रकरण से दूसरे को जोड़ने का प्रयत्न नहीं किया गया है। कवि हठात् एक से दूसरे प्रकरण पर चला गया है।

मधुमालती की विषयवस्तु की तीसरी विशेषता है इतिवृत्तात्मकता। मनोहर के जन्म से कथा आरम्भ होती है और मधुमालती से विवाह होने के बाद समाप्त हो जाती है। कथा की इस इतिवृत्तात्मक योजना में ही कवि ने नवीनता का सन्निवेश किया है। यह नवीनता पूर्वराग की योजना में है। पूर्वराग के चार कारण माने गये हैं–प्रत्यक्षदर्शन, स्वप्न-दर्शन, चित्र-दर्शन और गुण-श्रवण। यहाँ मनोहर और मधुमालती के पूर्वराग के कारण में प्रत्यक्ष दर्शन और स्वप्न-दर्शन दोनों का मेल है। मनोहर और मधुमालती में प्रत्यक्ष दर्शन हुआ है किंतु वह स्वप्नवत् है। सुप्तावस्था में अप्सराओं ने मनोहर को मधुमालती के पास पहुँचा दिया है। मनोहर शारीरिक रूप से मधुमालती के निकट पहुँच गया है अवश्य किंतु सुप्तावस्था में दोनों पुनः उसी तरह अलग कर दिये जाते हैं जिस

होता है। इसीलिए यही कहना उपयुक्त है कि मनोहर और मधुमालती के पूर्वराग के कारण में प्रत्यक्ष दर्शन और स्वप्न-दर्शन, दोनों मिल गये हैं।

मधुमालती की विषयवस्तु की चौथी विशेपता है संयोगाश्रित और अनहोनी घटनाओं का समावेश। जैसाकि उस समय की प्रेमकथाओं में देखा जाता हैं, *मधुमालती* के कथानक में संयोगाश्रित और अनहोनी घटनाओं की भरमार है। निस्संतान सूरजभान के पास अचानक एक तपस्वी का आ जाना, परदेशी नर्तकों का आना, अप्सराओं का मनहोर को शय्यासमेत उठाकर ले जाना और वापस रख जाना, मधुमालती की खोज में जाते हुए मनोहर के जलयान का डूबना, मनोहर का बचकर तट पर लग जाना, पेमां से भेंट और राक्षस का वध, माता द्वारा मधुमालती को पक्षी बना दिया जाना, जिस समय पेमां मधुमालती के माता-पिता को सँदेशवाहक के द्वारा पत्रिका भेज रही थी उसी समय मनोहर का योगी के वेष में वहाँ पहुँच जाना, कितने दिनों से एक साथ रहते हुए भी ताराचंद का पेमां को पहले न देखकर झूले पर पहली बार देखना, ये सब संयोगाश्रित और अनहोनी घटनाएँ हैं जिनकी कोई तार्किक संगति नहीं है। आधुनिक पाठक का ध्यान इन घटनाओं पर जाता है अवश्य, पर इससे कथा के समग्र प्रभाव की कोई क्षति नहीं होती।

मधुमालती की कथावस्तु की पाँचवीं विशेषता यह है कि कवि कथा के साथ-साथ चल रहा है। ऐसा लगता है जैसे कवि पाठक को उँगली पकड़कर दिखा रहा हो और उससे आमने-सामने बात कर रहा हो। आदि से अंत तक ऐसी बात देखी जाती है। कुछ उदाहरण अलम् हैं। नवें छंद में मुहम्मद के उत्तराधिकारी चार खलीफाओं की वार्ता आरम्भ करने के पहले वे पाठकों को सम्बोधित करते हैं : "अब सुनु चहूं मीत कै बाता।" फिर सलीम शाह की प्रशंसा करते हुए कवि कहता है : "केहि मुख कहौं दान कै बाता।" निम्नांकित पंक्तियों में तो लगता है कि पाठक उसके सामने बैठा है और वह उसको सफाई दे रहा हो। अंगशोभा का वर्णन है। ऊपर से नीचे का वर्णन चल रहा है। त्रिवली का वर्णन करने के बाद कवि कहता है :

गुरजन लाज मनहिं मन मानेउं।
तौ नहिं मदन भंडार बखानेउं।

अर्थात् मन में गुरुजनों की लाज है, इसीलिए मदन-मंदिर का वर्णन नहीं किया। लगता है, पाठक उनके सामने बैठा सुन रहा है जिससे उसे एक अंग विशेष का वर्णन छोड़ देने की सफ़ाई देनी पड़ी। *मधुमालती* की विषयवस्तु की यह बड़ी विशेषता है कि कवि तो कथा के साथ-साथ चल ही रहा है, वह पाठक को भी अपने साथ लिये चल रहा है।

इसीसे सम्बंधित किंतु इससे किंचित् भिन्न कथा कहने की एक और विशेषता

यहाँ देखी जाती है जिसे छठी विशेषता कही जा सकती है। वह विशेपता यह है कि कथा का सूत्र टूटने पर कवि झट उसे जोड़ भी देता है। कवि विषयांतर होता है पर वह देर तक उस दशा में नहीं रहता। विषयांतरता पर ध्यान जाते ही चौंक कर वह टूटे हुए सूत्र को पकड़ लेता है। मनोहर के शयन का वर्णन करते-करते कवि नींद का वर्णन करने लगता है किंतु जैसे ही उसको याद आती है कि निद्रा का वर्णन तो उसका अभीष्ट नहीं है तो वह बोल उठता है :

हरि हरि कहां गयउं कहं रहेउं।
का किछु कहै लिए का कहेउं।
कुंवर बात कहिबे मैं लई।
बीच नींदि मोहिं हरि लै गई।
अब हौं पलटि कहैं सुनु बाता।
जस कुमार सुख निंद्रा मांता।

कवि पश्चात्ताप करता हुआ कहता है कि मैं तो कुँवर की बात कह रहा था किंतु बीच में ही नींद मुझे हर ले गयी अर्थात् कुँवर को छोड़कर मैं नींद का वर्णन करने लगा। अब लौटकर मैं पुनः कुँवर की बात कर रहा हूँ, सुनो कि कुँवर किस प्रकार सुख-निद्रा में मस्त था।

इसी तरह कवि पाठक की अपेक्षा का ख़याल कर इस बात की सूचना दे देता है कि वह कथा के किसी अंश को क्यों छोड़ रहा है। मधुमालती के पिता विक्रमराज ने अपने नगर से प्रयाण कर डोरियाधरपानी (एक स्थान का नाम) में डेरा डाला है। उसका वर्णन करते हुए कवि पाठक को सूचना देता है कि विक्रमराज ने जो वहाँ बड़े-बड़े महल खड़े किये उसका वर्णन मैं इसलिए नहीं कर रहा हूँ कि कहानी बढ़ जायगी : "कथा बढ़ति देखि मैं न सराहे।" इस प्रकार कवि पाठक की आकांक्षा का सदा ध्यान रखता है और उसका समाधान करता चलता है।

मधुमालती की विषयवस्तु की सातवीं विशेषता यह है कि कवि ने यथाप्रसंग मुखर चिंतन किया है और व्यक्तिगत टीका-टिप्पणी की है। इसका उदाहरण चौबीसवें-पच्चीसवें छंद में देखा जाता है। यह ग्रंथ का भूमिका-भाग है। कवि खिज्र ख़ाँ की प्रशंसा कर रहा था। अचानक वह वचन (वाणी) के विषय में चिंतन करने लगा। वह उसको सम्बोधित करके कहता है :

अरे अरे बचन कहां तोर बासा।
औ कहं हुत तोर परगासा।
औ कहं हुत उतपति भइ तोरी।
जहां नाहिं संचरति बुधि मोरी।

अचरिजु एक मोरे चित अइई।
कोउ न अरथ ताहि कर कहई।
वचन केर उतपति मुंह सेऊं।
मानुस बोल अम्वर दहुं केउं।
रहै न वचन केर पति जहां।
कैसें वचन अम्बर होइ तहां।
देखहु मनहि विचारि कै बचन बचन हिय मांह।
बचन ऐस है ताकर जो बर्तत सभ मांह।।

इसी तरह छियासवें-सड़सठवें छंद में मनोहर के शयन का वर्णन करते हुए कवि निद्रा के विषय में चिंतन करने लगा है।

निष्कर्प यह है कि *मधुमालती* की कथा के स्वरूप में कोई नवीनता न होने पर भी इसकी विषयवस्तु की कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जिनपर पाठक का ध्यान जाता है।

मधुमालती का भाव-सौंदर्य

काव्य में भाव-सौंदर्य की सृष्टि तीन प्रकार से होती है। रमणीय प्रकरणों की अवतारणा के द्वारा, मार्मिक प्रकरणों को पहचानकर उसका चमत्कारपूर्ण वर्णन करके एवं जीवन के हलके क्षणों को उदात्त बनाकर कवि अपने काव्य को भाव-सौंदर्य से पूर्ण कर देता है। मंझन इस कला में निपुण थे। उन्होंने इन तीनों प्रकारों से *मधुमालती* में भाव-सौंदर्य की सृष्टि की है।

प्रवंधकाव्य में रमणीय प्रकरणों की अवतारणा के लिए अवकाश तो रहता ही है, उसमें इसकी आवश्यकता भी होती है। रमणीय प्रकरणों के सन्निवेश से विषयवस्तु सजीव और रसवती हो जाती है। किसी कवि में प्रवंधकाव्यात्मक सूझ की यह पहली पहचान है। यद्यपि *मधुमालती* की कथा इतिवृत्तात्मक और सपाट है तथापि इसकी विषयवस्तु इस बात का साक्ष्य देती है कि मंझन में यह सूझ थी। *मधुमालती* में ऐसा पहला प्रकरण है अप्सराओं के द्वारा सुप्तावस्था में मनोहर को शय्या-समेत सोयी हुई मधुमालती के पास रख आना। यह प्रकरण अपने में वेतुका लग सकता है किंतु *मधुमालती* की कथावस्तु में इसका अपना औचित्य है। *मधुमालती* एवं इस प्रकार के अन्यान्य प्रेमाख्यानक रहस्य, रोमांच आदि से पूर्ण अलौकिक, असम्भव और अनहोनी घटनाओं से भरे होते हैं। अतः इस प्रकार के काव्य में वैसे ही प्रकरण रमणीय प्रतीत होंगे। मंझन को प्रेमाख्यानकों के कथानक के स्वरूप की पहचान है। इसीलिए उन्होंने मनोहर और मधुमालती के मध्य पूर्वराग उत्पन्न करने के लिए शास्त्रीय आधारों को ग्रहण न कर अप्सराओं द्वारा दोनों को मिला देने और फिर अलग कर देने की कल्पना की है। मनोहर के रूप पर अप्सराएँ इतनी मुग्ध हो गयीं कि उन सबने उसके योग्य सुंदरी मधुमालती के पास उसे पहुँचा दिया। मनोहर को निद्रावस्था में वहाँ ले जाया गया था और जिस समय अप्सराएँ सोये हुए मनोहर को शय्या-समेत मधुमालती के पास पहुँचाया उस समय मधुमालती भी सोयी हुई थी। नींद टूटने पर मनोहर मधुमालती को देखकर जिस मनोदशा में पहुँच जाता है और फिर मधुमालती की नींद टूटने पर मनोहर को देखकर उस पर जो प्रतिक्रिया होती है, दोनों का वड़ा चमत्कारपूर्ण वर्णन

कवि ने किया है।

इस प्रकरण के द्वारा कवि ने कई प्रयोजन सिद्ध किये हैं। ऐसा पहला प्रयोजन है मधुमालती के रूप-वर्णन का अवसर निकालना। चौवीस छंदों में मधुमालती का विस्तृत नख-शिख-वर्णन होता है। इसका आरम्भ द्रष्टव्य है :

जेउं जेउं देखै रूप सिंगारा।
खिन मुरछै खिन चेत संभारा।
देखि रूप चक्रित चित रहा।
बिधि यह कौन कहाँ मैं अहा।
एक रूप औ किएं सिंगारा।
मुनिबर परहिं देखि मुख बारा।
रूप रेख का कहौं बखानी।
सहस भाउ होइ हियें समानी।
देखत रूप जीउ भरमानां।
बेकहल पात जिमि प्रान उड़ाना।
रूप सिंगार सोहागिनि जेउं जेउं देखि अघाइ।
तेउं तेउं नैन न परिहरहिं रूप जो रहे लोभाइ।

यहाँ केवल मधुमालती के अपूर्व सौंदर्य की ओर ही संकेत नहीं है, वरन् नींद से जगने पर अचानक रूपवती मधुमालती को देखकर मनोहर की जो दशा हुई उसकी भी झलक कवि ने यहाँ दिखा दी है। यही नहीं, कवि पाठक को सामने रखकर वह झलक दिखा रहा है। यह सम्पूर्ण रूप-वर्णन एक आकर्षक प्रकरण है। और उपर्युक्त छंद उसकी सुंदर भूमिका है। इसी प्रकार कवि ने रूप-वर्णन के इस प्रकरण को हठात् समाप्त नहीं करके निम्नांकित शब्दों में उसका उपसंहार किया है :

सोवत बरनि जियहिं पछितानेउं।
कस न जगाइ सिंगार बखानेउं।
अब जगाइ रस वात कहाई।
अरु रस बचन सुनत रस पाई।
दुवौ भुआ सिर ऊपर आनी।
अंग मोरि बनिता जंभुआनी।
सजग भए बिवि लोचन कैसे।
उठे घात सर पारधि जैसे।
सहज भाउ जौ भौंह संकोरा।
मदन धनुक जनु दीन्ह टंकोरा।
मदन धनुक दुइ भौंहैं चढ़ीं जो गाढे ठान।
तीनिउं लोक संकाने तिन भौहन्ह के बान।।

मधुमालती के जगने का कैसा रमणीय वर्णन है! कवि कहता है कि सुप्तावस्था में उसके सौंदर्य का वर्णन करके मैं पछता रहा हूँ कि उसको जगाकर उसका वर्णन क्यों नहीं किया। इसके बाद मधुमालती के अँगड़ाई लेने और मनोहर को विस्फारित नेत्रों से देखने का जो बिम्बात्मक वर्णन है वह अनुभव करने की चीज़ है।

एक दूसरा रमणीय प्रकरण है मनोहर का पेमां से मिलना। मनोहर बिना पता जाने मधुमालती की खोज में चल पड़ा है। मनोहर को उसका पता कैसे मिले, यह एक बड़ी समस्या है। इसके समाधान के लिए कवि ने उसे पेमां से मिलाया। अन्य माध्यम से भी मनोहर को मधुमालती का पता बताया जा सकता था पर इस प्रेम-कथा में पेमां के द्वारा मधुमालती का पता बताये जाने में एक विशेष सौंदर्य और चमत्कार है। इस प्रकरण के द्वारा भी कवि ने कई प्रयोजन सिद्ध किये हैं। इस प्रकरण की कल्पना कर कवि ने कथा को अत्यंत सपाट होने से बचाया है। फिर इससे कथा को सुंदर विस्तार भी मिला है। तीसरी बात यह है कि इसके द्वारा कवि ने नायिका के रूप-वर्णन का एक और अवसर निकाला है। पेमां तो यहाँ नायिका नहीं है, इसलिए कवि ने उसका विस्तृत नख-शिख-वर्णन न कर उसके अद्‌भुत रूप की एक झलक मात्र दिखायी है। मनोहर सोयी हुई पेमां को देख रहा है :

सौवति सैनि बरनि को कहा।
कंवल भंवर जनु संपुट गहा।
अंब्रित बिख दुइ जानि न गए।
बिंबि-लोयन दहुं काकें भए।
बदन लिलाट सराहि न जानौं।
खिन पूनिवं खिन दुइजि बखानौं।
सारंग सारंग हिय प्रतिपाला।
ससि कै प्रीति मिरिग रथ चाला।
तिल कपोल पर बनेउ अपारा।
एक बूंद भा सहस सिंगारा।
नौ सत साजें बाला निभरम सेज सुख सोव।
दुइ चखु कुंवर चकोर जेउं चंद्रबदनि मुख जोव।।

इस प्रकरण के द्वारा कवि को मनोहर की वीरता और उसके उदात्त चरित्र पर प्रकाश डालने का भी अवसर प्राप्त हुआ है। राक्षस को मारने में मनोहर की वीरता का परिचय मिलता है तो पेमां के साथ भाई-बहन का सम्बन्ध मानने में उसका शील प्रकट हो रहा है। इस प्रकरण की अवतारणा कर कवि ने मनोहर को नायक के गुणों से मंडित किया है।

तीसरा रमणीय प्रकरण है पेमां और ताराचंद का मिलन। मनोहर और पेमां का पुनर्मिलन कराने में पेमां ने बहुत बड़ी भूमिका अदा की। यदि पेमां को उसका प्रियतम नहीं मिलता तो यह प्रेम-कहानी अधूरी प्रतीत होती। इसीलिए कवि ने पेमां को ताराचंद प्राप्त कराया है। दोनों का मिलन भी बड़े नाटकीय ढंग से हुआ है। पेमां झूला झूल रही थी, उसका वस्त्र अस्त-व्यस्त था, उसी समय ताराचंद की दृष्टि उस पर पड़ती है। ताराचंद पेमां को देखकर अचेत हो जाता है :

सौहीं दिस्टि पेमां पर परी।
पैंघति आहि पैंघ पर खरी।
झूलत उर आंचर उधिरानां।
देखि कुंवर चित गएउ गियानां।

सम्पूर्ण कथा में इस प्रकरण की अपनी रमणीयता है। इस प्रकार मंझन में रमणीय प्रकरणों की सृष्टि करने की सूझ और शक्ति है, इसमें कोई संदेह नहीं।

भाव-सौंदर्य की सृष्टि का दूसरा आधार होता है मार्मिक प्रकरणों का चमत्कारपूर्ण वर्णन। मार्मिक प्रकरणों की पहचान और उसके चमत्कारपूर्ण वर्णन की सूझ मंझन में पर्याप्त है। *मधुमालती* की कथावस्तु में अनेक ऐसे प्रकरण हैं जो मार्मिक कहे जाने योग्य हैं। ऐसे कुछ स्थलों में प्रथम है मनोहर के जन्मोत्सव का वर्णन। पुत्रोत्पत्ति सबके लिए सुखद है। इसलिए जितने विलम्ब से उसकी प्राप्ति होती है, माता-पिता का हर्ष उतना ही अधिक होता है। यदि वृद्धावस्था में उसकी प्राप्ति हो तब तो फिर कहना ही क्या ! मनोहर का जन्म भी पिता की वृद्धावस्था में होता है। अतः उसके पिता सूरजभान की प्रसन्नता का अनुमान किया जा सकता है। मंझन कहते हैं :

बिरिध बैस कै संतति खिन-खिन रहसै राउ।
सभ दिन कोउ कोलाहल औ निसि हरख बधाव।।

वृद्ध वयस् में पुत्र प्राप्त कर राजा क्षण-क्षण हर्षित होते थे। दिन में कौतुक और कोलाहल रहता था एवं रात में हर्ष का बधावा होता था। इस पुत्रोत्सव का वर्णन मंझन ने मार्मिकता और विस्तार के साथ किया है।

नायक-नायिका का प्रथम मिलन जीवन की ऐसी मार्मिक घटना है जिसका वर्णन नहीं हो सकता। फिर मनोहर और मधुमालती का मिलन तो बहुत विचित्र प्रकार से हो रहा है। मनोहर सोया हुआ है और अप्सराएँ उसको शय्या-समेत वहाँ ले आयी हैं जहाँ मधुमालती सोयी हुई है। थोड़ी देर के बाद मनोहर की नींद टूटती है और वह मधुमालती के अद्भुत रूप को देखता है। नींद टूटने पर सबसे पहले मनोहर का ध्यान इस बात पर जाना चाहिए कि वह वहाँ पहुँचा कैसे। किंतु ऐसा नहीं हुआ। इसका कारण यह है कि मधुमालती का रूप इतना रमणीय, इतना अद्भुत और इतना अलौकिक है

कि मनोहर उसी में खो जाता है। वह मधुमालती के रूप को देखने में खोया ही हुआ था कि मधुमालती जग जाती है। मधुमालती पर स्वाभाविक प्रतिक्रिया होती है। स्वभावतः ही उसका ध्यान इस बात पर जाता है कि राजकुमार के रूप में दिखायी पड़नेवाला यह प्राणी कौन है और वहाँ किस प्रकार पहुँचा। मनोहर अपना परिचय देकर फिर उसका परिचय पूछता है। बात करते-करते मनोहर के मन में काम व्याप जाता है। उसकी इस अवस्था का वर्णन कवि ने अत्यंत सजीवता के साथ किया है। कामाकुल होकर मनोहर मधुमालती की शय्या पर चला जाता है और उसके उरोजों की ओर अपना हाथ बढ़ाता है। तब मधुमालती मनोहर की शय्या पर चली जाती है और मनोहर को नीति-धर्म का उपदेश देती हुई वारण करती है। फिर प्रेम के निर्वाह की दृढ़ प्रतिज्ञा करके दोनों मिलते हैं। दोनों के व्याकुल मिलन का वर्णन कवि ने अत्यंत मार्मिकता के साथ किया है :

कबहूं चिहुर लहरि बिस सारहिं।
कबहूं नैन मंत्र पढ़ि मारहिं।
कबहूं लीन पेम रस माहां।
कबहूं आप माहं गलबाहां।
कबहूं भायनि प्रीति बढ़ावै।
कबहूं सहज भाउ रस आवै।
कबहूं नैन मिलि रस उपजावहिं।
कबहूं पेम अनंद बढावहिं।
कबहूं पेम समुंद हिलोरा।
कबहुं आपु महं प्रीति निहोरा।
कबहुं पेम रस मांती गरबन दिस्टि न लाउ।
कबहुं पेम भाउ रस मोही प्रीतम दासि कहाउ।।
कबहूं पेम घुमाइ अडावै।
कबहूं सुधारस सींचि जियावै।
कबहूं पेम अनंद हुलासा।
कबहूं दुहुन्ह बियोग तरासा।
कबहूं नैन रूप फुलवारी।
कबहूं जिउ जोबन बलिहारी।
कबहूं पेम महारस लेहीं।
कबहूं जीउ नेवछावरि देहीं।
कबहूं लाज समुझि कुल भावा।
कबहूं रहस हुलास होइ आवा।

जौ जिउ बारि प्रीति सेउं राखै कैसे हुं रहा न जाइ।
जौ सोइ भाउ सहज सों मिलई प्रीति साथ जिउ जाइ।।

प्रेमोन्मत्त नायक-नायिका के प्रथम मिलन का यह अनुपम वर्णन है। यह केवल तन का तन से मिलन नहीं अपितु मन का भी मन से मिलन है। तन की चेष्टाओं और मन के भावों को कवि ने यहाँ मूर्त्त कर दिया है। प्रेम की अनुभूतियों का ऐसा सटीक, सूक्ष्म और सजीव वर्णन दुर्लभ है।

मनोहर और मधुमालती के प्रथम मिलन का यह प्रकरण सम्पूर्ण प्रेम-कथा का हृदय है। केवल एक इसी प्रकरण से मंझन की मार्मिक स्थलों की पहचान और उसके चमत्कारपूर्ण वर्णन की क्षमता का प्रमाण मिल जाता है।

ऐसा ही प्रसंग पेमां और ताराचंद के मिलन का था किंतु उसके वर्णन में कवि का चि्त नहीं रमा है, इसलिए उसे चलता कर दिया है।

भाव-सौंदर्य का तीसरा आधार होता है जीवन के हलके-फुलके क्षणों को गरिमा से मंडित कर देना। *मधुमालती* की इस प्रेम-कथा में दो ऐसे स्थल हैं जहाँ कवि ने अपनी इस सूझ का परिचय दिया है। ऐसा पहला प्रसंग है मनोहर और मधुमालती के प्रथम मिलन का वर्णन। मधुमालती और मनोहर रति और कामदेव के समान हैं। दोनों में यौवनसुलभ कामवेग है। रात्रि का समय और घोर एकांत है। सुरत-सुख प्राप्त करने के लिए बड़ा उपयुक्त समय और स्थान है। मनोहर आगे बढ़ता भी है, पर मधुमालती उसे रोकती है और कहती है कि पहले रुद्र, ब्रह्मा और हरि को साक्षी करके एक-दूसरे के प्रति सच्चे बने रहने की प्रतिज्ञा करनी चाहिए। मनोहर इसको स्वीकार करता है और तब उसके बाद ही दोनों काम-क्रीड़ा में लिप्त होते हैं। इस योजना से मनोहर और मधुमालती की उन्मत्त काम-क्रीड़ा उदात्त हो गयी है।

इसी तरह मनोहर राक्षस से पेमां का उद्धार कर उसके माता-पिता के पास उसे ले गया तो पेमां उसको अर्पित की गयी किंतु मनोहर ने इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। फिर ताराचंद पक्षी बनी हुई मधुमालती को उसके माता-पिता के पास ले गया तो उसके सामने भी मधुमालती को स्वीकार करने का प्रस्ताव आया पर उसने भी यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि दोनों में भाई-बहन का सम्बन्ध स्थापित हो चुका है। ऐसा दिखाकर मनोहर और ताराचंद के चरित्र को तो उत्कर्ष दिया ही गया है, इससे इस प्रेम-कथा में भाव-सौंदर्य का संवर्द्धन भी हुआ है।

निष्कर्षतः मधुमालती भाव-सौंदर्य से परिपूर्ण कृति है।

मधुमालती का काव्यरूप

मधुमालती में एक अविच्छिन्न और सुसम्बद्ध कहानी होने के कारण निस्संदेह यह प्रबंधकाव्य है। अतः प्रबंधकाव्य के भेदों में ही इसका काव्यरूप निर्धारित किया जाना उचित है। आकार की दृष्टि से प्रबंधकाव्य के तीन वर्ग हैं : सबसे बड़ा महाकाव्य, उससे छोटा काव्य या एकार्थकाव्य और सबसे छोटा खंडकाव्य कहा जाता है। इनमें महाकाव्य और खंडकाव्य तो लोकप्रिय विधाएँ हैं किंतु काव्य या एकार्थकाव्य संस्कृत-साहित्य में भी अल्पज्ञात है और हिंदी-साहित्य में तो यह सर्वथा अचर्चित ही है। अतः इसके स्वरूप को स्पष्ट करने पर ही यह निश्चित हो सकेगा कि *मधुमालती* इन तीनों में से क्या है।

'एकार्थकाव्य' शब्द का प्रथम प्रयोग आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने किया (*वाङ्मय विमर्श,* प्र. सं., पृ. 14)। किंतु इस काव्यरूप की कल्पना *साहित्यदर्पण* कार विश्वनाथ ने की थी और उन्होंने इसे 'काव्य' की संज्ञा दी थी (*साहित्यदर्पण,* 6/328)। तत्सम्बंधी श्लोक के दो पाठ मिलते हैं। प्रथम पाठ इस प्रकार है :

भापा-विभाषा नियमात्काव्यं सर्गसमुत्थितम्।
एकार्थप्रवणैः पद्यैः सन्धिसामग्र्यवर्जितम्।।

द्वितीय पाठ में 'समुत्थितम्' के स्थान पर ''समुज्झितम्'' है। प्रथम पाठ के अनुसार एकार्थकाव्य सर्गयुक्त और द्वितीय के अनुसार सर्गरहित हो जाता है। चार संस्करणों (निर्णय सागर संस्करण, शालग्राम शास्त्री द्वारा सम्पादित संस्करण, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित द्वितीय संस्करण और डॉ. नगेंद्र-सम्पादित *भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा* में संकलित पाठ) में 'समुत्थितम्' और दो ही संस्करणों (काणे एवं डा. सत्यव्रत सिंह द्वारा सम्पादित संस्करण) में 'समुज्झितम्' पाठ होने के कारण पहला ही पाठ ग्रहण करना उपयुक्त प्रतीत होता है। इस तरह विश्वनाथ के अनुसार भाषा अथवा विभाषा में रचित, सर्गो से युक्त, संधियों की समग्रता से रहित और एक ही अर्थ को लेकर चलनेवाला पद्य काव्य है। आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने अंतिम तत्त्व को प्रमुख मानकर इसे 'एकार्थकाव्य' की अभिधा दी। यह सर्वथा उचित है। एक तो 'काव्य' शब्द सामान्य

काव्य का बोध कराता है जिसके अंतर्गत प्रबंध और मुक्तक, दोनों समाविष्ट हो जाते हैं। अतः प्रबंधकाव्य के एक वर्ग के लिए उस शब्द का प्रयोग वांछनीय नहीं है। दूसरे, 'एकार्थकाव्य' नाम से इस प्रकार के काव्यरूप का वह लक्षण भी स्पष्ट हो जाता है जो इसे इसके सहोदर काव्यरूपों—महाकाव्य और खंडकाव्य से पृथक् करता है। महाकाव्य में नायक का प्रायः समग्र जीवन आ जाता है जिससे उसमें चारों पुरुषार्थों की सिद्धि हो जाती है। 'काव्य' को 'एकार्थप्रवण' बताकर विश्वनाथ ने स्पष्ट कर दिया है कि उसमें एक ही अर्थ की सिद्धि होती है। अतएव 'काव्य' के लिए 'एकार्थकाव्य' नाम सब प्रकार से उपयुक्त है।

एकार्थकाव्य की इस कल्पना का आदिरूप रुद्रट-प्रतिपादित 'लघुकाव्य' में दृष्टिगत होता है। उन्होंने काव्य को महान् काव्य और लघुकाव्य, दो वर्गों में विभक्त कर लघुकाव्य का लक्षण इस प्रकार बताया :

> ते लघवो विज्ञेया येष्वन्यतमो भवेच्चतुर्वर्गात्।
> असमग्रानेकरसा ये च समग्रैकरसयुक्ताः।। (*काव्यालंकार,* 16/6)

रुद्रट का 'महान् काव्य' वस्तुतः महाकाव्य है और उनका 'लघुकाव्य' एकार्थकाव्य है। विश्वनाथ की 'एकार्थप्रवणता' यहाँ 'येष्वन्यतमो भवेच्चतुर्वर्गात्' के रूप में विद्यमान है। इसके अतिरिक्त विश्वनाथ ने सर्गबद्धता पर तो रुद्रट ने रस की अवस्थिति पर ज़ोर दिया है। विश्वनाथ और रुद्रट के लक्षणों में मुख्य अंतर यही है कि प्रथम ने एकार्थकाव्य के अंतर्बाह्य दोनों स्वरूपों को स्पष्ट किया है, जबकि रुद्रट ने लघुकाव्य के केवल आंतरिक स्वरूप पर ही अपना ध्यान केंद्रित रखा है। जो हो, दोनों को मिलाकर एकार्थकाव्य के निम्नांकित लक्षण निर्धारित किये जा सकते हैं :

(1) एकार्थकाव्य की रचना भाषा या विभाषा में होती है ;
(2) यह सर्गयुक्त होता है;
(3) यह एकार्थप्रवण होता है, अर्थात् चतुर्वर्ग में से कोई एक ही इसका उद्देश्य होता है;
(4) इसमें सभी संधियाँ नहीं होतीं, कुछ ही संधियाँ होती हैं;
(5) इसमें अनेक रस असमग्र रूप में अथवा एक रस समग्र रूप में रहता है।

इनमें से सर्गबद्धता के नियम को हिन्दी के एकार्थकाव्यकारों ने शिथिल कर दिया है। हिन्दी के एकार्थकाव्य सर्गीकृत होते हैं और नहीं भी होते हैं। सर्ग का काम कभी-कभी वर्णन-संकेत से भी लिया जाता है। सम्भाषण में 'अमुक उवाच' एवं वर्णनात्मक स्थल में 'अमुक वर्णन' लिख दिया जाता है। सर्गीकृत काव्य में भी कहीं-कहीं ये संकेत देखने को मिल जाते हैं। हिन्दी-एकार्थकाव्य के स्वरूप को निर्धारित करनेवाला दूसरा तत्त्व होता है छंद। एकार्थकाव्य में छंद की स्थिति पर रुद्रट और विश्वनाथ, दोनों मौन हैं।

अतः ऐसा प्रतीत होता है कि संस्कृत के एकार्थकाव्य एक ही छंद में लिखे जाते थे। किंतु हिन्दी के एकार्थकाव्य आद्यन्त एक छंद में लिखे गये हैं और अनेक छंदों में भी।

यद्यपि खंडकाव्य एक लोकप्रिय काव्य-विधा है तथापि इसके स्वरूप के सम्बन्ध में वहुत भ्रांति है। संस्कृत-काव्यशास्त्र में खंडकाव्य की परिभाषा एकमात्र विश्वनाथ के *साहित्यदर्पण* में मिलती है। काव्य (एकार्थकाव्य) की परिभाषा देते हुए उसी के सातत्य में वे कहते हैं :

खण्डकाव्यंभवेत्काव्यस्यैकदेशानुसारि च। (*साहित्यदर्पण*, 6/328-29)

अर्थात् खंडकाव्य काव्य (एकार्थकाव्य) के एक देश का अनुसरण करनेवाला होता है। खंडकाव्य की इस परिभाषा को लेकर हिन्दी के विद्वानों में बहुत भ्रांति रही। बहुतों ने इस परिभाषा के 'काव्य' शब्द से 'महाकाव्य' अर्थ ग्रहण कर लिया और खंडकाव्य को महाकाव्य के एक देश का अनुसरण करनेवाला मान लिया। वस्तुतः काव्य (एकार्थकाव्य) के एक देश का अनुसरण करनेवाला खंडकाव्य होता है। काव्य (एकार्थकाव्य) में चारों पुरुषार्थों में से किसी एक की सिद्धि होती है जिसके एक देश का अनुसरण खंडकाव्य में होता है। इस तरह खंडकाव्य का लक्षण ठहरता है कि उसमें एक पुरुषार्थ से सम्बंधित किसी एक घटना का वर्णन हो।

अब देखा जाय कि महाकाव्य, एकार्थकाव्य और खंडकाव्य में से *मधुमालती* को किस कोटि में रखा जाय। *मधुमालती* को महाकाव्य नहीं कहा जा सकता क्योंकि इसमें चारों पुरुषार्थों की सिद्धि नहीं दिखायी गयी है। इसमें एक ही अर्थ की सिद्धि है और वह लौकिक दृष्टि से काम और आध्यात्मिक दृष्टि से आत्मा-परमात्मा का मिलन है। इस प्रकार *मधुमालती* महाकाव्य की कोटि में नहीं रखी जा सकती। इसी प्रकार यह खंडकाव्य भी नहीं है क्योंकि एक तो खंडकाव्य का आकार इतना बड़ा नहीं होता, दूसरे, इसमें एक नहीं वरन् कितनी घटनाएँ वर्णित हैं। इस प्रकार महाकाव्य और खंडकाव्य का भेदक तत्त्व *मधुमालती* में नहीं है।

मधुमालती निस्संदेह एकार्थकाव्य है। एकार्थकाव्य के उपर्युक्त सारे तत्त्व इसमें उपलब्ध हैं। एकार्थकाव्य के सम्वंध में पहली बात यह है कि उसकी रचना भाषा या विभाषा में होती है। *मधुमालती* की भाषा अवधी है जो उस समय की तो काव्यभाषा ही थी, इस समय वह हिन्दी की विभाषा है। इस तरह यह लक्षण *मधुमालती* में मिलता है।

एकार्थकाव्य का दूसरा लक्षण है कि वह सर्गयुक्त होता है। *मधुमालती* की कथा सर्गबद्ध नहीं है। इस सबंध में दो बातें हैं। पहली बात तो यह है कि *साहित्यदर्पण* के सम्बद्ध श्लोक का जो एक दूसरा पाठ मिलता है उसके अनुसार एकार्थकाव्य सर्गरहित होता है। फिर, जैसाकि ऊपर दिखाया गया है, हिन्दी के एकार्थकाव्यकारों ने सर्गबद्धता

के नियम को शिथिल कर दिया है, अर्थात् हिन्दी के एकार्थकाव्य सर्गबद्ध हैं और नहीं भी हैं। इस प्रकार इस दूसरे लक्षण के आधार पर भी *मधुमालती* को एकार्थकाव्य मानने में कोई बाधा नहीं है।

एकार्थकाव्य का तीसरा लक्षण यह है कि चतुर्वर्ग में से कोई एक ही इसका उद्देश्य होता है। एकार्थकाव्य के लक्षणों में यही सर्वप्रमुख है क्योंकि यही इसे महाकाव्य और खंडकाव्य से पृथक् करता है। जैसा ऊपर कहा गया है, महाकाव्य में चारों वर्ग (पुरुषार्थ अथवा अर्थ) और खंडकाव्य में किसी एक वर्ग से सम्बंधित कोई एक घटना वर्णित होती है। *मधुमालती* में चर्तुवर्ग नहीं आ पाये हैं, यह स्पष्ट है। फिर यदि इसमें केवल मनोहर और मधुमालती का मिलन भर दिखाया गया होता तो यह ग्रंथ खंडकाव्य की परिधि में आ सकता था। किंतु इसमें तो एक ही वर्ग अथवा अर्थ से सम्बंध रखने वाली दो कथाएँ हैं : एक मनोहर और मधुमालती की तथा दूसरी ताराचंद–पेमां की। इस प्रकार यह पूर्णतः एकार्थप्रवण है।

एकार्थकाव्य का चौथा लक्षण यह है कि इसमें सभी संधियाँ नहीं होतीं, कुछ ही संधियाँ होती हैं। संधियों की संख्या पाँच है : मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और निर्वहण। बीज अर्थप्रकृति जब आरम्भ अवस्था से मिलती है तब मुखसंधि का आविर्भाव होता है। इसमें अनेक तरह के रसों को उत्पन्न करनेवाली बीजोत्पत्ति पायी जाती है। बिंदु अर्थप्रकृति और प्रयत्न अवस्था को जोड़नेवाली प्रतिमुख संधि है। उस बीज का, जो मुख संधि में बोया जाता है, किंचित् लक्ष्य और किंचित् अलक्ष्य रहकर उद्‌भिन्न होना प्रतिमुख संधि है। जिस प्रकार प्रथम-प्रथम फूटनेवाला अंकुर अस्पष्ट अवस्था में रहता है उसी प्रकार मुख संधि में बोया हुआ बीज यहाँ आकर अंकुरित होने पर भी अस्पष्ट ही रहता है। गर्भ संधि में पताका अर्थप्रकृति और प्राप्त्याशा अवस्था को जोड़ा जाता है। जब बीज दिखायी पड़ जाने के बाद अदृश्य हो जाय किंतु उसका अन्वेषण बार-बार किया जाय तब गर्भ संधि होती है। ध्यातव्य है कि बीज बिल्कुल नष्ट नहीं हो जाता, वह दब जाता है। अर्थात् यहाँ फल-प्राप्ति की संभावना तो रहती है पर विघ्न या व्यवधान के कारण फल-प्राप्ति का निश्चय नहीं हो पाता। फल के गर्भस्थ रहने के कारण ही इसे गर्भ संधि कहा जाता है। विमर्श संधि का अन्य नाम अवमर्श संधि भी है। इसमें प्राप्त्याशा अवस्था और प्रकरी अर्थप्रकृति का मेल होता है। जहाँ क्रोध, व्यसन या लोभ से फल-प्राप्ति के सम्बंध में पर्यालोचन किया जाता है वहाँ विमर्श संधि होती है। पाँचवीं और अंतिम संधि है निर्वहण। इसमें फलागम अवस्था और कार्य अर्थप्रकृति का मेल हो जाता है। यहाँ एक ही प्रयोजन में सभी अर्थों का पर्यवसान हो जाता है। अब द्रष्टव्य है कि *मधुमालती* में इनमें से कौन-कौन संधि पायी जाती है।

संधियों की कल्पना रूपक के कथानक को ध्यान में रखकर की गयी है। प्रबंधकाव्य

के कथानक में सफलतापूर्वक इनकी योजना नहीं हो सकती। फिर भी ये संधियाँ प्रवंधकाव्य में सर्वथा अप्राप्तव्य भी नहीं कही जा सकतीं। *मधुमालती* की कथा यद्यपि इतिवृत्तात्मक और सपाट है तथापि कुछ संधियाँ इसमें खोजी जा सकती हैं। यहाँ प्रतिमुख और गर्भ, ये दो संधियाँ स्पष्ट दिखायी पड़ती हैं। मनोहर का जहाज़ जब समुद्र में डूब जाता है और मनोहर को समुद्र की लहरें किनारे पर अचेत डाल देती हैं वहाँ पर प्रतिमुख संधि मानी जा सकती है। मनोहर मधुमालती को प्राप्त करने के लिए चल पड़ा है किंतु समुद्र में डूबने से बचकर जब वह घोर वन में पहुँच गया है तो कहा नहीं जा सकता कि वह मधुमालती को प्राप्त कर सकेगा अथवा नहीं। इसी अनिश्चय की स्थिति के कारण यहाँ प्रतिमुख संधि है। ठीक इसीके पश्चात् गर्भ संधि है। मनोहर को वन में पेमां से मुलाकात होती है जो मधुमालती को जानती है। इससे मनोहर के मन में आशा जगती है कि उसे मधुमालती प्राप्त हो जायेगी। किंतु इसमें वह राक्षस, जो पेमां को वहाँ ले आया था, विघ्न है। उस राक्षस से पेमां का उद्धार करने पर ही तो पेमां मधुमालती की प्राप्ति में सहायता कर पायेगी। अतः राक्षस के वध में ही फल-प्राप्ति (मधुमालती की प्राप्ति) गर्भस्थ है। अतएव यहाँ गर्भ संधि मानी जा सकती है। इस प्रकार पाँच संधियों में से दो संधियाँ तो *मधुमालती* की कथा में स्पष्ट दिखायी पड़ती हैं। लक्षण के अनुसार एकार्थकाव्य में सभी तो नहीं किंतु कुछ संधियाँ अवश्य होती हैं। इस प्रकार *मधुमालती* एकार्थकाव्य के चौथे लक्षण को भी पूरा कर रही है।

एकार्थकाव्य का पाँचवाँ लक्षण रस को लेकर है। एकार्थकाव्य में एक से अधिक रस अपूर्ण रूप में रह सकते हैं और यदि इसमें एक ही रस है तो उसे पूर्ण रूप में रहना आवश्यक है। *मधुमालती* में एक ही रस शृंगार है और वह अपने पूर्ण रूप में है। शृंगार के दोनों पक्ष संयोग और वियोग यहाँ विस्तार और गंभीरता के साथ चित्रित हुए हैं। संयोग का वर्णन तीन स्थलों पर हुआ है। दो बार तो मनोहर और मधुमालती के और एक बार ताराचंद तथा पेमां के मिलन के वर्णन में संयोग शृंगार द्रष्टव्य है। विरह का वर्णन भी दो बार हुआ है। एक बार मनोहर और मधुमालती का पारस्परिक विरह वर्णित हुआ है। दूसरी बार पेमां के प्रति ताराचंद का विरह वर्णित हुआ है। यह वर्णन मार्मिक तो है ही, पूर्ण भी है क्योंकि इसमें कतिपय कामदशाएँ भी आ गयी हैं। रस के सारे अंग भी यहाँ पर विद्यमान हैं। मनोहर और ताराचंद आश्रय हैं जबकि मधुमालती और पेमां आलम्बन हैं। अलौकिक रमणी मधुमालती का सुसज्जित और एकांत शयन-कक्ष मनोहर के और शिथिल वस्त्रवाली झूले पर पेंग भरती हुई पेमां ताराचंद के संदर्भ में उद्दीपन हैं। इस प्रकार शृंगार रस की सम्पूर्ण सामग्री यहाँ उपलब्ध है। अतः एकार्थकाव्य का पाँचवाँ लक्षण भी *मधुमालती* में घटित हो रहा है। निष्कर्षतः *मधुमालती* सभी दृष्टियों से एकार्थकाव्य है।

मधुमालती में वर्णित प्रेम

मधुमालती के प्रेम-वर्णन की वहुत-सी विशेषताएँ हैं। इस सम्वन्ध में पहली वात यह है कि मंझन ने इसमें केवल नायक-नायिका के माध्यम से ही प्रेम को चित्रित नहीं किया है वरन् अपनी ओर से भी उसकी महत्ता का वर्णन किया है। *मधुमालती* के आरम्भिक अंश में ही ईश्वर, गुरु, शाहेवक़्त की प्रशंसा करने के बाद वे प्रेम की महत्ता का परिचय देते हुए कहते हैं :

पेम अमोलिक नग संयसारा।
जेहिं जिअं पेम सो धनि औतारा।
पेम लागि संसार उपावा।
पेम गहा विधि परगट आवा।
पेम जोति सभ सिस्टि अँजोरा।
दोसर न पाव पेम कर जोरा।
बिरुला कोइ जाके सिर भागू।
सो पावै यह पेम सोहागू।
सबद ऊँच चारिहुं जुग बाजा।
पेम पंथ सिर देइ सो राजा।
पेम हाट चहुं दिसि है पसरी गै बनिजौ जे लोइ।
लाहा औ फल गाहक जनि डहकावै कोइ।।

यहाँ जिस प्रेम का वर्णन मंझन ने किया है वह नर-नारी के बीच का वासनामय प्रेम नहीं है। वह प्रेम सात्त्विक है और किन्हीं दो व्यक्तियों तक सीमित न रहकर सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त है।

अव मनोहर और मधुमालती के माध्यम से कवि ने जिस प्रेम को व्यक्त किया है उसकी विशेषताएँ द्रष्टव्य हैं। इस प्रेम-वर्णन की विशेषता यह है कि इसकी उत्पत्ति बड़े स्वाभाविक ढंग से हुई है। मनोहर को मधुमालती के पास पहुँचाने का ढंग निश्चय ही अस्वाभाविक है। अप्सराएँ सोये हुए मनोहर को शय्यासमेत मधुमालती के शयन-कक्ष

में ले जाकर रख देती हैं जहाँ मधुमालती सो रही है। किंतु यह घटना भी तब घटती है जब मनोहर की ग्रह-दशा वैसी हो जाती है जिसकी भविष्यवाणी ज्योतिषियों ने उसके जन्म के समय ही कर दी थी। ग्रह-प्रभाव से जीवन में अनहोनी घटना भी घटती देखी जाती है। जो हो, इस बिंदु के बाद जो वर्णन है वह बड़ा स्वाभाविक है। अप्सराएँ मनोहर को मधुमालती के पास छोड़कर जब चली जाती हैं तो मनोहर जगता है। उसकी दृष्टि मधुमालती पर पड़ती है। वह उसके अपूर्व सौंदर्य को निरखने लगता है। इसी अवसर पर कवि ने मधुमालती का नख-शिख-वर्णन किया है। स्वाभाविक रूप से मधुमालती भी जगती है। उसकी भी दृष्टि मनोहर पर पड़ती है। मनोहर की दृष्टि जब मधुमालती पर पड़ी थी तो वह उसके सौंदर्य को निरखने में लीन हो गया था किंतु मधुमालती मनोहर को देखकर आश्चर्य में पड़ जाती है और उससे पूछने लगती है कि तुम कौन और क्या हो ! दोनों में रसपूर्ण वार्ता होती है और दोनों एक-दूसरे के प्रेम में मग्न हो जाते हैं। पेमां के प्रति ताराचंद का प्रेम तो और भी स्वाभाविक रूप से उत्पन्न हुआ है। ताराचंद झूला झूलती हुई पेमां को देखता है। झूले पर उसका वस्त्र स्वभावतः ही अस्त-व्यस्त हो गया है। ताराचंद की दृष्टि पेमां के उन्नत उरोजों पर पड़ती है और तब वह मुग्ध हो जाता है। यह बड़ा स्वाभाविक है। इन दोनों प्रेमी-युगल का प्रेम एक और कारण से स्वाभाविक मालूम पड़ता है और वह यह है कि मनोहर और ताराचंद दोनों अविवाहित हैं। यह *मधुमालती* के प्रेम-वर्णन की दूसरी विशेषता है।

मंझन के प्रेम-वर्णन की तीसरी विशेषता यह है कि यह प्रेम उभयपक्षीय है अर्थात् मनोहर में मधुमालती के लिए जितना प्रेम है उससे कम मधुमालती में मनोहर के लिए नहीं है। कहना चाहिए कि दोनों में एक-दूसरे के लिए प्रेम एक पर एक है। मनोहर मधुमालती के प्रति अपने प्रेम को इन शब्दों में व्यक्त करता है :

तैं जौ समुंद लहरि मैं तोरी।
तैं रबि मैं जग किरनि अंजोरी।
मोहिं आपुहिं जनि जानु निरारा।
मैं सरीर तुइं प्रान पियारा।
मोहि तोहि को पारै बगराई।
एक जोति दुइ भाउ देखाई।
सभ गियान चखु देखेउँ हेरी।
हम तुम्ह दुहुं परिचय कब केरी।
अजहूँ मोहि न चीन्हेसि बारी।
संवरि देखु चित आदि चिन्हारी।
अरुझा फाँद पेम कर अहा जो दुहुं जिय केर।
होतु आपु महं परिचै सइं नर धर जिउ फेरि ।।

प्रेम की अनन्यता की पहचान यही है कि प्रथम परिचय में ही लगता है कि आदि से ही परिचय है। मधुमालती ने इस प्रेम-निवेदन का उपयुक्त उत्तर दिया है। वह मनोहर को कहती है कि ऐसा न समझो कि प्रेम-भाव पर केवल पुरुष का ही अधिकार है, नारी में उसे चौगुना समझो :

मति जानहु सति भाउ पर पुरुषहिं अधिक सुभाउ।
चौगुन करि करि जानियहि बाला कर सति भाउ।।

मधुमालती का प्रेम केवल बात तक ही सीमित नहीं है। वह भी अनुभव करती है कि मनोहर से उसका प्रेम पूर्व जन्म का ही है। इसीलिए वह भी उतना ही प्रेम-विभोर है जितना मनोहर। देखिए :

सुनत सुनत रस भाउ कै बाता।
कामिनि जीउ सहज मद मांता।
सुनतहि पेम बात जिय भाई।
पूरुब प्रीति समुझि चित आई।
जस सुबास सेउं मिलै समीरू।
दुइ मिलि कैं भे एक सरीरू।
एत आइ दुहुं नेह समाना।
भा दूनहुं कर एक पराना।
सहजहिं दुवौ जीव मिलि गए।
रहा न अंतर एकै भए
पुनि जौ पेम पिरीत पुब्ब के बिबि जिय आइ समानि।
उठी ऊभि उर सांस दुहुं के समुझि आदि पहिचानि।।

मधुमालती मनोहर से उसी तरह मिल गयी जिस तरह वायु से सुगंध मिल जाती है। दोनों एक हो गये। दोनों में कोई अंतर नहीं रहा। तात्पर्य यह है कि मनोहर और मधुमालती का प्रेम एकांगी नहीं, वरन् उभयपक्षीय है। ताराचंद और पेमां के विवाहपूर्व प्रेम में इस प्रकार की उभयपक्षीयता इसलिए नहीं है कि विवाह के पूर्व दोनों का साक्षात्कार ही नहीं हुआ था।

मधुमालती में वर्णित प्रेम की चौथी विशेषता है संयम। विवाह के पूर्व भी मनोहर और मधुमालती दो बार तन्मयतापूर्वक मिले हैं किन्तु जैसे ही मनोहर कामातुर होकर मधुमालती के उरोजों की ओर हाथ बढ़ाता है त्यों ही वारण करती हुई मधुमालती कहती है :

जौ बिधि तोहि इहां लै आवा।
औ मोहि तोहि भा दिस्टि मेरावा।

सोइ बिधि मोहि तोहि जंम खेइहि।
परिहरि पाप धरम निधि देइहि।
अकरम कै का धरम नसाई।
गएं धरम पुनि जिउ पछताई।
धरम जाइ मुख लागै कारी।
कुटुंब लाज कुल आवै गारी।
हम तुम्ह साच बचा वह कीजै।
रुद्र ब्रह्म हरि अंतर दीजै।
प्रीति सपत दिढ बाचा मोहि रे देहु तुम्ह लेहु।
जंम जंम निरबाहिहि बिधि मोहि तोहि सनेहु।।

मनोहर और मधुमालती का मिलन एक युवक और एक युवती का उच्छृखंल मिलन नहीं है। इस मिलन में संयम और मर्यादा है। मधुमालती स्पष्ट कहती है कि पहले ब्रह्मा, विष्णु और महेश को साक्षी करके प्रेम के निर्वाह के लिए शपथ और दृढ़ वचन का आदान-प्रदान करो तब विधाता हम दोनों के प्रेम को जन्म-जन्मांतर तक निभाएगा। मनोहर भी शील और मर्यादा की रक्षा करता है। दोनों में शपथ और दृढ़ वचन हो जाने के बाद दोनों तन-मन से मिलते हैं।

दूसरी बार जब पेमां के नगर में मनोहर और मधुमालती मिलते हैं तो मधुमालती अपनी विरहाकुलता प्रकट करती हुई कहती है :

एक दिसि पीर पिरंम कै एकदिसि कुल कै कानि।
मोहि दुऔ दिसि दूभर भइसि इत कुल उत जिय हानि।।

विरह और मर्यादा का यह द्वंद्व अपूर्व है। एक ओर तो मनोहर के प्रेम में व्याकुल होने के कारण उसके प्राण जाने पर हैं, दूसरी ओर यदि विवाह के पूर्व उसकी यह प्रेमाकुलता प्रकट होती है तो कुल की प्रतिष्ठा जाती है ! एक ओर प्राण की हानि तो दूसरी ओर प्रतिष्ठा की हानि का प्रश्न है। प्राण तो सभी को प्रिय हैं, मधुमालती को भी हैं किंतु मधुमालती को प्रतिष्ठा भी उतनी ही प्रिय है जितना कि प्राण। यहाँ मधुमालती बहुत देर तक मनोहर से कुल की प्रतिष्ठा की बात करती है और अपना अंतिम निर्णय इस प्रकार सुनाती है :

जौ लहि पिता संकलप नहिं मोहि कै कन्यांदानु।
तौ लहि होइ न सुरत रस औरु सबै रस मानु।।

मनोहर भी इसका योग्य उत्तर देता है :

बर कामिनि जब ताईं तोहि मोहि होइ न धरम बियाह।
पाप न अंतर संचरै बिधि बाचा निजु आहि।।

जिस प्रकार प्रेम और तन्मयता उभयपक्षीय हैं, उसी प्रकार संयम की चेतना भी दोनों ओर समान ही है। इस तरह शील, संयम और मर्यादा से युक्त यह प्रेम उत्कृष्ट और असाधारण है।

मधुमालती के प्रेम-वर्णन की पाँचवीं विशेषता है अतिरंजना। यह *मधुमालती*-जैसे और उस युग के काव्य के लिए अस्वाभाविक नहीं है। सच तो यह कि उस युग के तथा इस प्रकार के काव्य में जितना अस्वाभाविक प्रेम-वर्णन देखा जाता है उतना तो *मधुमालती* में है भी नहीं। *मधुमालती* के प्रेम-वर्णन को मात्र अतिरंजित कहा जा सकता है और वह अतिरंजना भी एक सीमा के अंदर ही है। केवल दो स्थलों पर यह अतिरंजना देखी जाती है। एक बार मनोहर और मधुमालती के प्रथम मिलन और दूसरी बार ताराचंद और पेमां के प्रथम मिलन में मनोहर और ताराचंद को क्रमशः मधुमालती और पेमां के अद्भुत रूप को देखकर मूर्च्छित होता हुआ दिखाया गया है। मधुमालती के अद्भुत रूप को देखकर मनोहर की जो दशा हुई उसका वर्णन करते हुए मंझन कहते हैं :

जेउं जेउं देखै रूप सिंगारा।
खिन मुरछै खिन चेत संभारा।

ज्यों-ज्यों वह मधुमालती के अद्भुत रूप को देखता है त्यों-त्यों वह एक क्षण मूर्च्छित होता है तो दूसरे क्षण होश में आ जाता है। यही मूर्च्छित होनेवाली बात अतिरंजित कही जायेगी। इसी तरह झूला झूलती हुई पेमां के उरोज पर दृष्टि पड़ते ही ताराचंद बेहोश होकर इस प्रकार गिर पड़ता है कि सभी लोग घबरा जाते हैं। सबकी घबराहट का वर्णन सात-आठ छंदों में हुआ है। तारांचद की यह दशा तो निश्चय ही अतिरंजित है। मनोहर की मूर्च्छा के वर्णन में केवल अतिरंजना है किंतु ताराचंद की मूर्च्छा तो अतिरंजना के साथ-साथ हास्यकर भी है।

मधुमालती में वर्णित प्रेम की छठी विशेषता है आध्यात्मिकता जिसका आभास कई स्थलों पर और कई प्रकार से मिलता है। नायक-नायिका की पारस्परिक अनुभूतियों का चित्रण कर उनके प्रेम के स्वरूप को स्पष्ट करने के साथ-साथ मंझन ने अपनी ओर से भी प्रेम के स्वरूप पर प्रकाश डाला है जिसकी चर्चा ऊपर हो चुकी है। वे कहते हैं कि संसार में प्रेम एक अमूल्य नग है। जिसके हृदय में प्रेम है उसका जन्म धन्य है। विधाता ने प्रेम के लिए ही संसार को उत्पन्न किया है। प्रेम को ग्रहण करके ही विधाता प्रकट हुआ है अर्थात् प्रेम के रूप में विधाता ही इस संसार में प्रकट हुआ है। प्रेम की ज्योति से सारी सृष्टि प्रकाशित है। प्रेम का कोई दूसरा जोड़ा नहीं है। विरला ही कोई भाग्यवान् इस प्रेम के सौभाग्य को प्राप्त करता है। चारों युगों में यह शब्द उच्च स्वर में घोषित हुआ है कि प्रेम-पंथ में जो सिर देता है, वह राजा होता है। तात्पर्य यह है कि प्रेम में न्योछावर हो जानेवाला व्यक्ति राजा है, शेष व्यक्ति रंक हैं। प्रेम की

हाट चारों ओर फैली है। वहाँ जाकर जिसने वाणिज्य किया, उसने लाभ पाया, इसलिए कोई उससे भटके नहीं। यहाँ जिस प्रेम का वर्णन है उसको साधारण अथवा लौकिक प्रेम नहीं कहा जा सकता । प्रश्न है कि ग्रंथ के भूमिका-भाग में प्रेम की दिव्यता की ओर संकेत करने की क्या आवश्यकता थी। इसका उत्तर यही है कि आगे चलकर मनोहर-मधुमालती के माध्यम से जिस प्रेम को कवि प्रस्तुत करना चाहता है उसके विषय में किसी को संदेह न हो, इसीलिए उसने अलौकिक प्रेम की झाँकी आरम्भ में ही दिखा दी है।

मनोहर और मधुमालती के मिलन-वर्णन में भी कवि ने प्रेम की आध्यात्मिकता की झलक दिखायी है। कहाँ-कहाँ और कैसे यह झलक मिलती है, यह द्रष्टव्य है। ऊपर कहा गया है कि मधुमालती के अद्‌भुत रूप को दखकर मनोहर का मूर्च्छित होना अतिरंजना की सृष्टि करता है। किंतु यह अतिरंजना लौकिक दृष्टि से है। मधुमालती में अलौकिक सत्ता का आभास दिखाने के लिए ही मनोहर को मूर्च्छित कराया गया है। असीम ईश्वर के अलौकिक रूप को देखकर ससीम मनुष्य कैसे होश में रह सकता है ?

फिर मनोहर और मधुमालती में जब वार्तालाप होने लगा तो उसका वर्णन करता हुआ कवि कहता है :

परत स्रवन पीतम रस बाता।
सुनत भएउ सुख अस्टौ गाता।

अर्थात् प्रियतम (मधुमालती) की रसपूर्ण बात कान में पड़ते ही मनोहर के आठों अंगों में सुख हुआ। कतिपय सूफ़ी काव्यों में नायिका को ईश्वर के प्रतीक-रूप में चित्रित किया गया है जिसकी याद उपर्युक्त पंक्तियाँ दिलाती हैं। इस प्रकार मनोहर-मधुमालती के प्रेम में अलौकिकता का आभास देनेवाला एक स्थल यह भी है।

आगे चलकर मधुमालती ने अपना परिचय देते हुए कहा है कि वह दोनों लोकों को प्रकाशित करनेवाली है (छंद 110)। स्पष्ट है कि मधुमालती को अलौकिक बताना कवि का अभीष्ट है। अलौकिक सत्ता ही हाड़-मांस की मधुमालती के रूप में प्रकट हुई है। तभी तो वह दोनों लोकों को प्रकाशित करती है !

इसी प्रसंग में मनोहर मधुमालती को जिस रूप में देखता है उससे भी उसकी अलौकिकता सिद्ध होती है। मधुमालती के रूप में जिस रूप के दर्शन मनोहर कर रहा है, वह देखने योग्य है :

इहै रूप सकती औ सीऊ।
इहै रूप त्रिभुवन कर जीऊ।
इहै रूप परगट बहु भेसा।

इहै रूप जग रांक नरेसा।
इहै रूप त्रिभुवन जग बेरसै महि पयाल आगास।
सोई रूप परगट मैं देखा तुव माथें परगास।।

मधुमालती की इस दिव्यता का वर्णन दूर तक चला है। यह वर्णन मधुमालती की अलौकिकता में कोई कसर नहीं रहने देता है। मनोहर और मधुमालती के प्रथम मिलन के इस वर्णन से लगता है कि मधुमालती ईश्वर है और मनोहर जीव एवं मधुमालती और मनोहर का मिलन ईश्वर और जीव का मिलन है। यह इससे भी सिद्ध होता है कि मनोहर (जीव) को मधुमालती (ईश्वर) के पास पहुँचाया गया है। द्वितीय मिलन के अवसर पर मधुमालती का नाम सुनते ही मनोहर के शरीर में सात्त्विक भावों का उदित होना (छंद 316) और मधुमालती के द्वारा अपने रूप का परिचय देना इसको पुष्ट करता है। मधुमालती कहती है :

जौ कोइ देख चाह मम रूपा।
सुनहु बात एक कहौं अनूपा।
कै सकोच मम नैन पसारा।
दिस्टि मांगि लै आउ उधारा।
ताहि दिस्टि चाहइ मम रूपा।
इन्ह नैनन्हि देखि जाइ न रूपा।
जौ मम नैनन दिस्टि हथिआवै।
मोहि देखे तोहि औरु न भावै।
कहौं कुंवर मैं निहचै तोहीं।
इन्ह नैनन्हि देखि सकै न मोही।
कै जिउ जोबन तन मन नैन सवन दे बादि।
तब तो लोयन उघरहिं जेहि सूझै अंत आदि।

मधुमालती का यह कहना कि सामान्य नेत्रों से उसका रूप नहीं देखा जा सकता और उसके रूप को देख लेने के बाद कुछ देखना अच्छा नहीं लगेगा स्पष्टतः अलौकिकता का संकेत करता है क्योंकि ईश्वर को ही चर्म-चक्षुओं से नहीं देखा जा सकता और ईश्वर को देख लेने पर ही और कुछ देखना अच्छा नहीं लगता है। ऊपर उद्धृत मधुमालती के कथन से इस बात की निस्संदेह पुष्टि हो जाती है कि मधुमालती ईश्वर की और मनोहर जीव का प्रतीक है।

किंतु यह प्रतीक विवाहोपरांत मधुमालती की विदाई का वर्णन पढ़ने पर खंडित हो जाता है, यद्यपि अलौकिकता अक्षुण्ण रहती है। बेटी की विदाई का दृश्य बड़ा करुण होता है। माता तो विचलित हो जाती है। मधुमालती की माता अपना शोक प्रकट करती

हुई कहती है :

मधुमालति सेउं रानी कहै बात समुझाइ।
कुंवरि चलिहु तेहि देस कहं जहां सेउं कोइ नहि आइ।

अर्थात् मधुमालती से रानी रूपमंजरी कहती है कि हे कुमारी, तुम अब उस देश को चली जहाँ से लौटकर कोई नहीं आया। रूपमंजरी के इस कथन से मधुमालती की विदाई एक सामान्य बेटी की सामान्य विदाई नहीं रह जाती है। इसमें अलौकिकता का स्पष्ट संकेत है। लगता है, आत्मा (मधुमालती) परमात्मा (मनोहर) से मिलने जा रही है। इस प्रकार मनोहर और मधुमालती के प्रथम मिलन के अवसर पर मधुमालती के परमात्मा और मनोहर के आत्मा होने का जो आभास मिला था, वह यहाँ परिवर्तित हो जाता है। यहाँ प्रतीक उलट जाता है। यहाँ मधुमालती ही आत्मा और मनोहर परमात्मा मालूम पड़ता है। किंतु इससे कोई अंतर नहीं पड़ता क्योंकि सूफ़ी मानते हैं कि साधना के मार्ग में स्त्री-पुरुष का भेद कोई अर्थ नहीं रखता, स्त्री और पुरुप, दोनों साधना के उच्चतम स्तर तक पहुँच सकते हैं।[1] अतः प्रतीक के उलट जाने से प्रेम की अलौकिकता नष्ट नहीं हो रही है। *पदमावत* में भी ऐसी असंगति देखी जाती है। वहाँ भी कहीं तो पद्मावती का चित्रण परम तत्त्व के रूप में किया गया है और कहीं पद्मावती के मुँह से रत्नसेन का परम तत्त्व के रूप में वर्णन कराया गया है।

निष्कर्ष यह है कि *मधुमालती* में जिस प्रेम का निरूपण किया गया है वह अलौकिक है और वह सूफ़ियों की प्रेम-पद्धति पर ही है। आगे के विवेचन से यह बात और भी पुष्ट हो जायेगी।

---

1. रामपूजन तिवारी, *सूफ़ीमत-साधना और साहित्य* (वाराणसी, स. 2013), पृ. 293

मधुमालती में संयोग-वर्णन

मधुमालती में संयोग-वर्णन चार स्थलों पर हुआ है। तीन बार तो मनोहर और मधुमालती के मिलन का वर्णन कवि ने किया है। मनोहर और मधुमालती का पहली बार मिलन हुआ है अप्सराओं के द्वारा मनोहर को मधुमालती के पास पहुँचा देने पर। दूसरी बार पेमां ने इन दोनों का मिलन अपने महल में कराया है। तीसरी बार विवाह के बाद उन दोनों का मिलन हुआ है। संयोग-वर्णन का चौथा स्थल है पेमां और ताराचंद का मिलन जो दोनों के विवाह के बाद हुआ है।

मधुमालती के इस संयोग-वर्णन की कई विशेषताएँ हैं। इसकी पहली विशेषता यह है कि इस वर्णन में लौकिक दृष्टि से स्वाभाविकता और अस्वाभाविकता, दोनों है। पहले स्वाभाविकता देखी जाय। नर-नारी के मिलते ही संयोग घटित नहीं हो जाता। उसके लिए मानसिक भूमिका की अपेक्षा होती है। परस्पर वार्तालाप के द्वारा यह कार्य होता है। वार्तालाप के क्रम में ही काम-भाव का संचार होता है और तव दोनों पक्ष पहले मानसिक रूप से संयोग के लिए प्रस्तुत होते हैं। तदनंतर दोनों में शारीरिक संयोग घटित होता है। मंझन ने इस मनोवैज्ञानिक तथ्य की रक्षा की है। प्रथम मिलन में देर तक मनोहर और मधुमालती में वार्तालाप होता है। मानसिक भाव किस प्रकार शारीरिक चेष्टा का रूप लेता है, इसको कवि ने बड़ी सजीवता के साथ चित्रित किया है। द्वितीय मिलन के अवसर पर भी पर्याप्त वार्तालाप के पश्चात् ही मनोहर और मधुमालती में दैहिक मिलन हुआ है।

इस संयोग-वर्णन को स्वाभाविक मनोरमता प्रदान करनेवाला दूसरा तत्त्व है नायिका-पक्ष की लज्जा। विवाह के पूर्व दो बार मधुमालती का मनोहर से सुरत-रहित मिलन हुआ है। फिर भी, विवाह के बाद जब दोनों में समागम का प्रसंग आता है तो मधुमालती को स्वाभाविक संकोच होता है। संयोग-काल में स्त्रियों की लज्जा सर्वथा स्वाभाविक है। मधुमालती लज्जावश काम-क्रीड़ा में वरावर का हिस्सा नहीं ले पा रही है। इस पर चोरी-चोरी उसकी केलि देखनेवाली सखियाँ उसको कहती हैं कि तुमने कोकशास्त्र पढ़कर क्या किया :

तौ ओलट भै सखी एक कहा।
वाला कीन्ह कोक पढ़ि कहा।
चौंकी मधु सुनि वोल गति सही।
पै बुधि लाज दुहूं बिच गही।

दूसरे की केलि-क्रीड़ा को देखने की एक स्वाभाविक उत्सुकता व्यक्ति के मन में होती है। नारियों को प्रायः छिपकर अपनी सखियों की काम-क्रीड़ा देखने का अवसर मिल जाया करता है। सुरतलीन व्यक्ति तो जान नहीं पाता है कि उसकी क्रीड़ा चोरी से देखी जा रही है। ऐसी दशा में बाहर से उसको कोई टोक दे तो उसका चौंक उठना सर्वथा स्वाभाविक है। मधुमालती भी स्वभावतः ही चौंक उठती है।

नवयुवकों और नवयुवतियों में काम-क्रीड़ा के अनुभव सुनने और सुनाने की स्वाभाविक उत्सुकता और उत्साह रहता है। मधुमालती से भी पेमां और अन्य सखियाँ रात में घटित होनेवाले मिलन का वृत्तांत पूछती हैं :

पेमां पूंछ दुवौ कर गही।
कहु सो बात रैनि निरबही।
अउरी सखीं पूंछहिं फुसिलाई।
कहहु प्रीतम कस गियं तुम्हं लाई।
लाज न करहु कहहु मुख खोली।
किमि तुम्हं पिय भई प्रीति अमोली।
कुंवरि मांथ तरहुंड कै जोवै।
कहै न बात लाजि मुख गोवै।
तेउं तेउं सखी करहिं बहु आरी।
कहै न बात प्रेम रस बारी।
बहुत भांति फुसिलावहिं पूछहिं कै कै आरि।
हम सेउं गोइ बात रस केरी कहिहहु काहि उघारि।।

पेमां का दोनों हाथ पकड़कर पूछना और मधुमालती का लजाना, कितना स्वाभाविक है!

इतना स्वाभाविक वर्णन करनेवाले मंझन अस्वाभाविकता से नहीं बच पाये। संयोग-वर्णन में अस्वाभाविकता की सृष्टि वहाँ हो गयी है जहाँ रसपूर्ण वार्ता के मध्य मनोहर मूर्च्छित हो जाता है :

पुनि रस बचन सोहागिनि बोली।
अमिअ बचन रदनच्छद खोली।
चमके दसन कहत रस बाता।

चौंधे तीनि भुवन मों गाता।
सुनतहि बचन कुंवर मुरछाना।
हरेउ चेत चित गएउ गियाना।

मधुमालती की अमृतवाणी सुनते ही मनोहर मूर्च्छित हो जाता है और वह भी एक बार नहीं वरन् बार-बार मूर्च्छित होता है। लौकिक दृष्टि से निश्चय ही यह खटकनेवाली बात है। इस खटक को मिटाने पर मंझन का ध्यान गया है, ऐसा लगता है। मनोहर की मूर्च्छा पर मधुमालती का ध्यान गया है और उसने पूछा है :

रस रस पूंछे राजदुलारी।
भै सचेत कहु बचन संभारी।
निरभौ भएं कहहि जसि बाता।
कौन भाउ कांपै तोर गाता।
मोहि कहु अपने जिय कै पीरा।
कांपै कौने भाउ सरीरा।
औ खिन खिन जिउ बिसंभर जाई।
कहहु सत्त तुम्ह पिता दोहाई।

स्पष्ट है कि मनोहर की मूर्च्छा को मधुमालती भी नहीं समझ पा रही है।

मंझन के संयोग-वर्णन की दूसरी विशेषता है संतुलन। सूफ़ी प्रेमाख्यानकों में वियोग-वर्णन को प्रधानता दी गयी है और संयोग-वर्णन को गौण कर दिया गया है। *मधुमालती* में ऐसी बात नहीं है। यदि नाप-जोख किया जाय तब तो संयोग-वर्णन ही की मात्रा कुछ अधिक ठहरेगी किंतु सरसरी तौर पर देखने से दोनों में संतुलन ही दिखायी पड़ता है। संयोग-वर्णन चार स्थलों पर हुआ है और वियोग-वर्णन तीन स्थलों पर। कवि का चित्त संयोग और वियोग-वर्णन, दोनों में एक समान रमा है।

मधुमालती के संयोग-वर्णन की तीसरी विशेषता यह है कि कवि ने इसी में नख-शिख-वर्णन का अवसर निकाला है। दो स्थलों पर यह वर्णन हुआ है और दोनों ही स्थलों पर नायिका के सौंदर्य को नायक निरख रहा है। पहला नख-सिख-वर्णन है मधुमालती का। अप्सराओं ने सोये हुए मनोहर को सोयी हुई मधुमालती के निकट पहुँचा दिया है। नींद टूटने पर मनोहर मधुमालती के अंग-प्रत्यंग की शोभा का निरीक्षण कर रहा है। माँग से आरम्भ करके तलवे तक का वर्णन इक्कीस पद्यों में हुआ है। दूसरा नख-सिख-वर्णन पेमां का है जो ताराचंद के मुख से कराया गया है। झूला झूलती हुई पेमां के अनावृत उरोजों को देखकर बेहोश हुए ताराचंद को होश में लाकर जब मधुमालती उससे कहती है कि तुम लज्जा त्यागकर बताओ, यदि मैं उसका नाम सुन लूँ तो वह स्वर्ग की सुरांगना ही क्यों न हो, मैं उसे लाकर तुमसे मिला दूँ तो ताराचंद कहता है

कि मैंने जैसा उसे देखा है, वैसा बता रहा हूँ। फिर वह पेमां की माँग के वर्णन से आरम्भ करके उसके तलवे तक का वर्णन करता है। यह वर्णन छह पद्यों में हुआ है। इस प्रकार यह मधुमालती के नख-सिख-वर्णन की अपेक्षा बहुत संक्षिप्त है। संयोग-वर्णन के प्रसंग में और वह भी नायक के मुख से रूप-वर्णन कराने का एक अपना औचित्य है।

मधुमालती के संयोग-वर्णन की चौथी विशेषता उसके आरब्ध को लेकर है। सम्भोग शृंगार में यह देखा जाता है कि वह या तो नायक के द्वारा आरब्ध होता है अथवा नायिका के द्वारा। मंझन ने यहाँ भी संतुलन रखा है। उन्होंने नायक और नायिका, दोनों से आरब्ध कराया है। मनोहर और मधुमालती के प्रथम मिलन में तो स्पष्ट ही नहीं होता कि उसे नायक के द्वारा आरब्ध माना जाय अथवा नायिका के द्वारा। शपथ-वचन होते ही दोनों एक साथ क्रीड़ा, कौतुक और विनोद में लीन हो जाते हैं:

सपत बचा आपुस मों भएऊ।
प्रान प्रान सेतें मिलि गएऊ।।
क्रीड़ा कोड विनोद लोभाने दुहुं जिय पेम समान।
कबहुं रहसि जिउ हुलसहिं कबहूं हरहिं गियान।।

द्वितीय मिलन में कहा जा सकता है कि वह नायिका अर्थात् मधुमालती के द्वारा आरब्ध है। वहाँ कवि कहता है कि शपथ-वचन सुनते ही राजकुमारी (नायिका) ने लाज की यवनिका उघार दी :

वाचा सपत सुनि राजकुमारी।
लाज जमनिका दीन्हि उघारी।

विवाह के बाद मनोहर और मधुमालती का जो मिलन हुआ है वह नायक (मनोहर) के द्वारा आरब्ध है। :

कुँवर बाँह कामिनि गहि कहा।
....
अजहूं तजु पाछिलि निठुराई।
परिहिर लाज लागु उर आई।
....
नैन नैन सेउं लोभे मन सेउं मन अरुझान।
दुवौ हिय उर मिलि एक भे भजियउ प्रानहि प्रान।।

पहले मनोहर मधुमालती का हाथ पकड़ता है और लाज छोड़ने का अनुरोध करता है, तत्पश्चात् दोनों मिलते हैं, इसीलिए यह नायकारब्ध सम्भोग शृंगार का उदाहरण है। ताराचंद और पेमां के मिलन में भी नायकारब्ध सम्भोग शृंगार का उदाहरण मिलत है :

कुँवर पकरि कर अंगुरी चांपी।
सघन माहिं दामिनि जनु कांपी।।
बहुरि जौ कर कुच मर्दत गए।
सकुचि त सांस उसासत भए।

उपर्युक्त वर्णनों को देखने पर एक बात पर ध्यान जाता है। मंझन ने अपना काव्यशास्त्रीय ज्ञान प्रकट करने के लिए नायक अथवा नायिका से सम्भोग का आरम्भ नहीं कराकर उसे स्वाभाविक रूप में ही आरम्भ कराया है।

मधुमालती के संयोग-वर्णन की पाँचवीं विशेषता यह है कि उसमें अनुभावों की बड़ी सुंदर और स्वाभाविक योजना हुई है। नायक-नायिका के मिलने पर जो अनेक प्रकार की कायिक, वाचिक और मानसिक चेष्टाएँ होती हैं वे ही अनुभाव हैं। ये नायक और नायिका, दोनों में द्रष्टव्य होते हैं। फिर स्त्रियों की यौवनावस्था के अनुभाव-रूप 3 अंगज, 7 अयत्नज और 18 स्वभावज अलंकार भी माने गये हैं। *मधुमालती* के संयोग-वर्णन में इनकी अत्यंत स्वाभाविक, सजीव और मनोहारी योजना देखी जाती है। मनोहर और मधुमालती के प्रथम मिलन के अवसर पर मनोहर की दशा देखिए :

पिपर गात मनमंथ परगासा।
धुक धुक उर मुंचत घट सांसा।
काम बान बेधा न संभारेसि।
बर कामिनि उर हाथ पसारेसि।।

मनोहर में काम-भाव के जाग्रत होने का यह बड़ा सटीक वर्णन है।

नायिका के यौवनसुलभ अलंकारों का वर्णन *मधुमालती* में अनेकत्र हुआ है। प्रथम मिलन के अवसर पर 18 स्वभावज अलंकारों में से एक 'केलि' का वर्णन है। प्रिय के साथ कामिनी का विहार ही 'केलि' है। मधुमालती किस प्रकार मनोहर से मिल रही है, यह निम्नांकित अवतरण में देखा जा सकता है :

कबहूं चिहुर लहरि बिस सारहिं।
कबहूं नैन मंत्र पढ़ि मारहिं।
कबहूं लीन पेम रस माहां।
कबहूं आप माहं गलबाहां।
कबहूं भायनि प्रीति बढ़ावै।
कबहूं सहज भाउ रस आवै।
कबहूं नैन मिलि रस उपजावहिं।
कबहूं पेम अनंद बढ़ावहिं।
कबहूं पेम समुंद हिलोरा।

कबहूं आपु महं प्रीति निहोरा।
कबहुं पेम रस मांती गरबन दिस्टि न लाउ।
कबहुं पेम भाउ रस मोही प्रीतम दासि कहाउ।।

नायक-नायिका के मिलन का ऐसा वर्णन दुर्लभ है। यहाँ केवल तन का ही तन से मिलन नहीं हो रहा है, वरन् मन का भी मन से मिलन हो रहा है। यहाँ कायिक, वाचिक और मानसिक, तीनों चेष्टाएँ एक साथ देखी जा रही हैं। यह 'केलि' पुनः पद्य-संख्या 334, 451 और 492 में द्रष्टव्य है। विवाहोपरांत मनोहर और मधुमालती के मिलन-वर्णन में 'कुट्टमित' नामक स्वभावज अलंकार द्रष्टव्य है। नायक के द्वारा नायिका के स्तनों को पकड़ने, अधरों को चूमने आदि से अंतर में हर्ष होने पर भी बाहर से घबराहट और लज्जा के प्रदर्शन में 'कुट्टमित' होता है। मनोहर-मधुमालती के विवाहोपरांत प्रथम समागम के वर्णन में यह अलंकार देखा जाता है :

मुख मुख सन नहिं सौंह कराहीं।
प्रथम समागम मन थहराहीं।
कुँवर अधर अधरन्हि सेउं जोरै।
कुँवरि बिमुख भै भै मुख मोरै।
दीप भरम मुख फूंकि फूंकि बाला।
अधिकौ करै रतन उजियाला।
दुहुं कर लै लाजन्ह मुख झांपै।
अधर दसन खंडत डर कांपै।

केवल अलंकार-योजना की दृष्टि से ही यह वर्णन रमणीय नहीं है, वरन् प्रथम समागम की मनोदशा को यहाँ कवि ने मूर्त्त कर दिया है।

ताराचंद और पेमां के मिलन के वर्णन में 'भाव' नामक अंगज अलंकार दर्शनीय है। निर्विकार चित्त में प्रथम बार काम-विकार उत्पन्न होना 'भाव' है। पेमां और ताराचंद का प्रथम बार मिलन हो रहा है। ताराचंद की मनुहार पर पेमां में काम-भाव जाग्रत हो जाता है :

उठा कोह फुनि मनमंथ दापा।
मान ढील भा काम बियापा।
बज्र समान अही जो बाला।
भै रबि उदौ सोम औ पाला।

ताराचंद की मनुहार का पेमां पर उपयुक्त प्रभाव पड़ा। उसका क्रोध-भाव जाता रहा और काम-भाव दमकने लगा। उसका मान समाप्त हुआ और उसमें काम व्याप्त हो गया। जो बाला (पेमां) वज्र के समान बनी हुई थी वह उस प्रकार हो गयी जिस

प्रकार सूर्य के उदित होने पर चंद्रमा और पाला हो जाते हैं।

निष्कर्ष यह है कि संयोग-वर्णन में स्वाभाविक रूप से कुछ अलंकारों की योजना हो गयी है, कवि ने उसके लिए कोई चेष्टा नहीं की है।

मधुमालती के संयोग-वर्णन की छठी विशेषता यह है कि उसमें मांसलता या अश्लीलता नहीं है। संयोग-वर्णन में इसकी पूरी सम्भावना रहती है और कविगण इस दोष से ग्रस्त होते रहे हैं। पर मंझन के संयोग-वर्णन में यह दोष नहीं है। मिलन-वर्णन में कवि ने कायिक, वाचिक और मानसिक, सभी चेष्टाएँ दिखायी हैं पर सर्वत्र मर्यादा बनी हुई है। इसका कारण यह है कि कवि का ध्यान नायक-नायिका की दैहिक चेष्टाओं के विस्तृत वर्णन पर न होकर दोनों के प्रेम की अनन्यता पर है। कवि नायक-नायिका के मिलनजनित उल्लास को अधिक थाहता है, उनकी केलि-क्रिया के वाहरी रूप को कम देखता है।

मधुमालती के संयोग-वर्णन की सातवीं विशेषता यह है कि नायिका सामाजिक मर्यादा और कुल प्रतिष्ठा की बात करती है। सामाजिक नैतिकता के अनुसार विवाह-पूर्व नारी का यौन-सम्पर्क वर्जित है जिसकी अवज्ञा करने से कुल की अप्रतिष्ठा होती है। विवाह के पूर्व दो बार मधुमालती मनोहर से मिलती है और दोनों ही बार वह मनोहर को इसकी याद दिलाती है तथा मनोहर भी सहर्ष इसकी रक्षा करता है। संयोग-वर्णन की यह भी एक दुर्लभ विशेषता है।

मधुमालती के संयोग-वर्णन की आठवीं और अंतिम विशेषता यह है कि उसमें आध्यात्मिकता की झलक है। यह कई रूपों में दिखायी पड़ती है। प्रथम मिलन के अवसर पर मधुमालती से बात करते हुए बार-बार मूर्च्छित होना लौकिक दृष्टि से अस्वाभाविक प्रतीत होता है, इसमें कोई संदेह नहीं। इसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है। किंतु मनोहर की मूर्च्छा में भावाविष्टावस्था (वज्द) को देखना बहुत असंगत नहीं कहा जा सकता जिसका सूफ़ी-साधना में एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। सूफ़ी साधकों का यह विश्वास है कि भावाविष्टावस्था (वज्द) ही एक ऐसा माध्यम है जिससे आत्मा परमात्मा का साक्षात्कार कर सकती है और उससे एकत्व लाभ कर सकती है।[1] उस परम सौंदर्य को देखता हुआ आत्मा का बेसुध रहना ही भावविष्टावस्था है।[2] मधुमालती को देखते हुए मनोहर के मूर्च्छित होने में सूफ़ियों की इस भावाविष्टावस्था के दर्शन करना असंगत नहीं कहा जा सकता। मधुमालती के अद्भुत रूप को मंत्रमुग्ध होकर देखता हुआ मनोहर अचेत हो जाता है :

---

1. रामपूजन तिवारी, *सूफ़ीमत-साधना और साहित्य* (वाराणसी, स. 2013), पृ. 292
2. उपरिवत्, पृ. 263

चमके दसन कहत रस बाता।
चौंधे तीनि भुवन मों गाता।
सुनतहि बचन कुंवर मुरछाना।
हरेउ चेत चित गएउ गियाना।

x x x

औरि बाति जेति कामिनि कही।
सो न कुंवर चित एकौ रही।

जैसे ही मधुमालती ने बोलना आरम्भ किया, मनोहर सुनते ही मूर्च्छित हो गया और मधुमालती ने जो बातें कहीं उनमें से कोई भी मनोहर के चित्त में न रही। ऐसा वर्णन करके मनोहर को भावाविष्ट दिखाना ही मंझन का उद्देश्य प्रतीत होता है।

दूसरी बात, सूफियों का चरम लक्ष्य परमात्मा के साथ 'एकमेक' होना है।[3] यह बात भी संयोग-वर्णन में देखी जाती है। मनोहर बार-बार बहुत ज़ोर देकर और अनेक प्रकार से इस बात की घोषणा करता है कि उसमें और मधुमालती में कोई अंतर नहीं है। वह कहता है :

तै मैं दुवौ सदा संघ बासी।
औ संतत एक देह नेवासी।
औ मैं तुइं दुइ एक सरीरा।
दुइ माटी सानी एक नीरा।
एक बारी दुइ वहै पनारी।
एक दिया दुइ घर उजियारी।
एक जीउ दुइ घर संचारा।
एक अगिनि दुइ ठाएं बारा।
एकै हम दुइ कै औतारे।
एक मंदिल दुइ किंए दुवारे।
एकै जोति रूप पुनि एकै एक परान एक देह।
आपुहि आपु जो देइ कोइ चाहै तेहि कर कौन संदेह।।

इस 'एममेकत्व' को पुष्ट करता हुआ मनोहर मधुमलाती के साथ अपने सम्बंध को इस प्रकार स्पष्ट करता है :

तैं जौ समुंद लहरि मैं तोरी।
तैं रबि मैं जग किरनि अंजोरी।

---

3. रामपूजन तिवारी, *सूफीमत-साधना और साहित्य* (वाराणसी, स. 2013) पृ. 290,92

मोहि आपुहिं जनि जानु निरारा।
मैं सरीर तुइं प्रान पियारा।
मोहि तोहि को पारै बेगराई।
एक जोति दुइ भाउ देखाई।
सभ गियान चखु देखेउं हेरी।
हम तुम्ह दुहुं परिचै कव केरी।
अजहूं मोहि न चीन्हेसि बारी।
संवरि देखु चित आदि चिन्हारी।
अरुझा फांद पेम कर अहा जो दुहुं जिय केर।
होत आपु महं परिचै सइं नर धर जिउ फेरि।।

मनोहर कहता है कि तू यदि समुद्र है तो मैं तेरी लहर हूँ; तू यदि सूर्य है तो मैं संसार में उसकी प्रकाश-किरण हूँ; मुझे और अपने को तू एक दूसरे से अलग किया हुआ न समझ; मैं शरीर हूँ तो तू उसका प्रिय प्राण है। मुझे और तुझे कौन अलग कर सकता है ? एक ही ज्योति दो रूपों में दिखायी पड़ रही है। मैंने ज्ञान-चक्षु से सब कुछ निरख कर देखा, मेरा और तेरा, दोनों का पारस्परिक परिचय न जाने कब का है। ऐ बाले, तूने आज भी मुझे नहीं पहचाना ? स्मरण करके देख, तेरी और मेरी पहचान आदि की है क्योंकि दोनों जीवों का प्रेम का फंदा पहले से ही उलझा हुआ था, इसलिए आपस में परिचय होते ही मनुष्य अब स्वयं अपने जीव को धारण कर रहा है।

मनोहर ने मधुमालती के साथ अपनी अनन्यता का वर्णन बहुत विस्तार के साथ किया है। मनोहर के द्वारा मधुमालती के साथ प्रतिपादित यह अनन्यता किसी लौकिक नायक की लौकिक नायिका के प्रति मनुहार नहीं है। यह अनन्यता आत्मा और परमात्मा की ही हो सकती है। मंझन कहते हैं कि मधुमालती को देखकर मनोहर की दशा जल में खाँड़ और लवण के पड़ने के समान हो गयी, अर्थात् जैसे जल में पड़कर खँड़ और लवण अपना अस्तित्व गँवा देते हैं उसी प्रकार मनोहर मधुमालती के समक्ष अपना अस्तित्व भूल गया। निश्चय ही मंझन यह कहना चाहते हैं कि मनोहर और मधुमालती का मिलन सामान्य नायक-नायिका का मिलन नहीं है। यह तो आत्मा का परमात्मा से मिल जाना है :

जस सुबास सेउं मिलै समीरू।
दुइ मिलि कै भे एक सरीरू।

जैसे सुगंध हवा से मिलकर एक हो जाती है वैसे ही मनोहर और मधुमालती मिलकर एक शरीर हो गये।

सूफ़ी साधक परमात्मा को प्रियतम कहकर सम्बोधित करते हैं।[1] संयोग-वर्णन में

कवि ने मनोहर से तो वार-वार मधुमालती को प्रियतम कहलाया ही है, स्वयं भी उसे प्रियतम की संज्ञा दी है :-

परत स्रवन पीतम रस बाता।
सुनत भएउ सुख अस्टौ गाता।

मंझन कहते हैं कि प्रियतम (मधुमालती) की रसपूर्ण वार्ता सुनकर मनोहर के आठों अंगों में सुख हुआ। मनोहर भी मधुमालती के लिए 'प्रियतम' शब्द का प्रयोग करता है :

कहेसि कौन दिन आजु सोहावा।
जु हौं बास प्रीतम कर पावा।

पेमां जब मनोहर को कहती है कि आज मधुमालती से तुम्हारा मिलन होगा तो मनोहर उत्फुल्ल होकर कहता है कि आज कौन-सा सुहावना दिन है कि मैंने प्रियतम की सुगंध पायी। तात्पर्य यह है कि मधुमालती के लिए 'प्रियतम' शब्द का प्रयोग भी संयोग-वर्णन में आध्यात्मिकता की झलक दिखा रहा है।

निष्कर्षतः *मधुमालती* का संयोग-वर्णन लौकिक नर-नारी के मिलन का वर्णन नहीं, वह जीवात्मा और परमात्मा के मिलन का वर्णन है।

4. रामपूजन तिवारी, *सूफ़ीमत-साधना और साहित्य* (वाराणसी, सं. 2013), पृ. 178

मधुमालती में वियोग-वर्णन

मधुमालती के विरह-वर्णन को तीन स्तरों पर परखने की आवश्यकता है : विरह के विषय में मंझन का कथन, विरह (दुःख) के विषय में पात्रों का कथन और पात्रों की विरहानुभूति। सर्वप्रथम विरह के विषय में मंझन के कथन पर विचार किया जाय। मंझन कहते हैं कि दैव ने जिसको विरह का दुःख दिया उसको तीनों लोकों का राजा बना दिया। इसलिए कोई विरह के दुःख को दुःख न माने क्योंकि उसीके द्वारा जगत् में सुख आया। जिसके हृदय में विरह का दुःख है उसका जीवन धन्य है :

जेहिं जग दइअ बिरह दुख दिआ।
त्रिभुवन केर राउ सो किआ।
जनि कोइ बिरह दुक्ख जिअ मानै ओहिं जग आवा सुक्ख।
धनि जीवन जग ताकर जाहि बिरह दुख दुक्ख।।

स्पष्ट है कि मंझन यहाँ जिस विरह की बात करते हैं वह लौकिक नर-नारी का वियोग नहीं है। उनका अभीष्ट विरह निश्चय ही आध्यात्मिक है। मंझन यहाँ उस विरह की बात करते हैं जो परमात्मा से बिछुड़कर जीवात्मा को होता है। सामान्य मनुष्य तो सांसारिक प्रपंचों में पड़कर परमात्मा को विस्मृत कर बैठता है किंतु जो उससे बिछुड़ने के कारण दुःखी है और उससे मिलने के लिए छटपटाता रहता है वह निश्चय ही सामान्य से ऊपर है और वही परमात्मा के साथ एकत्व स्थापित कर सकेगा जो सूफियों का एकमात्र उद्देश्य होता है। मंझन आगे कहते हैं :

सिस्टि मूल बिरहा जग आवा।
पै बिनु पुव्व पुन्नि को पावा।
....
बिरह जीउ जेहि के घट होई।
सदा अमर रहै मरै न कोई।
कौनों पाठ पढ़े नहि पाइअ बिरह वुद्धि औ सिद्धि।
जा कहं देइ दयाल दया करि सो पावै यह निद्धि।।

अर्थात् सृष्टि के मूल में ही विरह है किंतु पूर्व जन्म के पुण्य के विना उसे कोई

प्राप्त नहीं कर सकता। जिसके शरीर में विरही आत्मा निवास करती है वह अमर रहता है किंतु विरह की बुद्धि और सिद्धि पुस्तक पढ़ने से नहीं होती। दयानिधान भगवान् दया करके जिसको देते हैं वही यह निधि प्राप्त करता है। मंझन का कथन सूफ़ीमत से समर्थित है। सूफियों के अनुसार यह आत्मा इस संसार में आने के पहले परमात्मा से अभिन्न रहती है। इस संसार में वह निर्वासित अवस्था में रहती है।[1] अतः सृष्टि के मूल में स्वभावतः ही विरह है। किंतु विरह की अनुभूति सभी को इसलिए नहीं होती कि सांसारिक प्रपंचों में पड़कर वह अपने उद्गम स्थल को विस्मृत कर देता है। इसीलिए मंझन कहते हैं कि पूर्वजन्म के पुण्य और भगवान् की कृपा से ही जीवात्मा को विरहानुभूति होती है। सूफ़ी यह मानते हैं कि जब तक भगवत्कृपा नहीं होती तबतक साधक के हृदय में प्रेम नहीं होता। साधक चाहे कितनी भी चेष्टा क्यों न करे, यह अमूल्य वस्तु तबतक प्राप्त नहीं होती जबतक भगवान् की दया नहीं होती।[2] तात्पर्य यह है कि मंझन ने विरह के विषय में जो कहा है उससे स्पष्ट है कि उनका उद्देश्य विरह को अलौकिक बताना है।

अब मधुमालती से वार्तालाप करते हुए मनोहर ने विरह के विषय में जो कहा है, वह विचारणीय है। मनोहर कहता है :

मैं जिउ दै तोर दुक्ख बेसाहा।
मैं न आजु तोरे दुक्ख दुखारी।
तोरे दुख सेउं मोहि आदि चिन्हारी।
जेहि दिन सिरेउ आंस बिधि मोरा।
तेहि दिन मोहि दरसेउ दुख तोरा।

अर्थात् मैंने जीवन देकर तुम्हारा दुःख मोल लिया। आज ही मैं तुम्हारे दुःख से दुःखी नहीं हूँ वरन् तुम्हारे दुःख से मेरा आदि से ही परिचय है। जिस दिन विधाता ने मेरे अंश का निर्माण किया उसी दिन मुझे तुम्हारा दुःख दिखायी पड़ा। मनोहर के इस कथन से विरह का अलौकिक स्वरूप ही उभरता है। मनोहर आगे कहता है :

मैं सभ तजि संकरेउं दुख तोरा।
मोर जिउ तोर तोर जिउ मोरा।
प्रान आदि घट होत न आवा।
बिधि तोर दुख मोहि तब दरसावा।
जौं रे बिकल्पि कहां मैं ताही।

---

1. रामपूजन तिवारी, *सूफ़ीमत-साधना और साहित्य* (वाराणसी, स. 2013), पृ. 282
2. उपरिवत्, पृ. 314

तार दुख अधिक देव विधि मोही।
मैं एहि दुख केरें वलिहारी।
सहस सुक्ख एहि दुख पर वारी।
कौनि जीभि वकतौं दुख वाता।
दुख के रूप सुख निधि के दाता।
एक निमिख दुख कहं नहिं पूजै चारिहुं जुग क सवाद।
कौन कौन सुख वेरसब तेहि दुख के परसाद।।

मधुमालती के विरह का यह दुःख वासनामूलक प्रेमजनित विरह का दुःख नहीं है। ऐसा दुःख प्रेमी अथवा प्रेमिका को काम्य नहीं होता। वह तो जैसे-तैसे मिलन चाहता है। विरह की अवस्था तभी प्रिय होती है जब उसके मूल में अशरीरी और आध्यात्मिक प्रेम रहता है। कारण, विरह प्रेम की जाग्रत अवस्था है और विरह की व्याकुलता से ही प्रेम की उत्कटता का पता चलता है। इसीलिए अलौकिक प्रेम का पथिक चाहता है कि विरह बना रहे। विरह का दुःख उसके लिए सुख हो जाता है। मनोहर कहता है :

कहेसि दुक्ख मानुस कर आसा।
जहाँ दुक्ख तहं मोर नेवासा।
जेहि ठां दुख होइ जग भीतर प्रीति होइ बस ताहि।
प्रीति बात का जानै बपुरा जेहि सरीर दुख नांहि।।

जहाँ विरह का दुःख है वहीं प्रेम का निवास है। जिसके भीतर विरह का दुःख नहीं वह प्रेम की बात क्या जाने ? मनोहर फिर कहता है :

दुख मानुस करि आदि गरासा।
ब्रह्मं कंमल महं दुख कर बासा।
जेहि दिन तेहि दुख सिस्टि समानां।
तेहि दिन तें जिउ जिउ जानां।
मोहि न आजु उपजेउ दुख तोरा।
तोर दुख आदि संघाती मोरा।
अब लै बहौं दुक्ख के कांवरि।
दुइ जग देउं सुक्ख नेउछावरि।
मैं अपान दै तोर दुख लिया।
मरि कै अब सो अंम्रित पिया।
तोर दुक्ख मधुमालति सुख दाएक संसार।
जेहि जिय माहिं तोर दुख उपजा धनि सो जग उजियार।।

आदि से ही दुःख ने मनुष्य को ग्रस रखा है। परमात्मा से अलग होकर आत्मा

जब पंचभूतों से निर्मित घट में प्रवेश करती है तब मनुष्य का जन्म होता है। इस प्रकार मनुष्य के जन्म के साथ-साथ उसे भीतर निवास करनेवाली आत्मा का परमात्मा से विरह आरम्भ हो जाता है। अतः विरह तो जीवात्मा का जन्म का ही साथी है। भक्त कवि तुलसीदास भी यही बात कहते हैं :

जिय जबतें हरि तें बिलगान्यो।
तबतें देह गेह निज जान्यो।।
मायाबस सरूप बिसरायो।
तेहि भ्रम तें दारुन दुख पायौ।। - *विनयपत्रिका*

निष्कर्ष यह है कि मधुमालती के साथ वार्तालाप में मनोहर जिस विरह की बात करता है वह लौकिक नहीं, अलौकिक है। विरह के विषय में पेमां का कथन भी ऐसा ही है। वन में मनोहर की दुःखगाथा सुनकर वह कहती है :

धनि जीवन तेहि केरा भारी।
जो जग भएउ बिरह बलिहारी।
सरग बुंद सभ होहिं न मोंती।
सभ घट बिरह देइ नहिं जोती।
कोटि माहिं बिरुला जग कोई।
जाहि सरीर बिरह दुख होई।
रतन कि सायर सायरहिं गज मुकुता गज कोइ।
चंदन कि बन बन उपनै बिरह कि तन तन होइ।।
जेहि जिय दैयं बिरह उपराजा।
निहचैं तीनि भुवन सो राजा।
....
बिरह दवां चारिहुं दिसि लागी।
जो न जरै सो गरुव अभागी।
बिरह दुक्ख दुख कहै न कोई।
जग मों बिरह दुक्ख सुख होई।

स्पष्ट है कि पेमां भी लौकिक विरह की बात नहीं कह रही है। मंझन ने विरह के विषय में जो कहा है, उसका सार पेमां ने प्रस्तुत कर दिया है।

विरह के विषय में मंझन और पात्रों के कथनों को देख लेने के उपरांत मनोहर और मधुमालती की विरहानुभूतियों पर विचार किया जाय। *मधुमालती* में नायक और नायिका, दोनों की विरहानुभूतियों का क्रम से वर्णन है और इसमें संतुलन है। अप्सराओं के द्वारा मनोहर और मधुमालती को अलग कर दिये जाने के बाद कवि पहले मधुमालती

की विरहाकुलता को ही पाठक के सामने रखता है। मधुमालती अपनी सखियों से कह रही है :

कुंवर एक सपने में देखा।
सपन रूप सौंतुख कर लेखा।
बिधनै मदन मूरति निरमएऊ।
जम न होइ पै जिउ लै गएऊ।
जम कै मीचु खिनक दुख देई।
बिरह मरन तिल तिल जिउ लेई।
एहि दुख सखी कैस निस्तरिहूं।
बिन जिउ किमि जग जीवन सरिहूं।
अब न सकौं रहि ओहि विनु घरी।
अचक गाज यह मोहि सिर परी।
बिनु जिय सखी सरीर यह एक तिल रहत संदेह।
जिउ अति निठुर निछोही सकै तौ रह विनु देह।।
जग जीवन भावै सब काहू।
मोहिं भरि बिरह मुएं सखि लाहू।
सभ कहं मरन होइ एक बारी।
मोहि सखी मरन भएउ देवहारी।
प्रीति लाइ मोहि गा परहेली।
जिउ लै गा सिर मोहनि मेली।
जनम न सुनां नाहुं दुख केरा।
अचक भएउ हम्ह दुख भटभेरा।
बिरह दगध औ कुल कै लाजा।
बनां आइ हम्ह जिय सों काजा।
कठिन पीर सखि विरह कै मो मुंह कही न जाइ।
किछु उपगार करहि जौं पारहु तौ मरिहूं विसु खाइ।।

मधुमालती के इस विरह-वर्णन पर शास्त्रीय दृष्टि से विचार किया जाय। शास्त्रीय दृष्टि से यह अभिलाषा-हेतुक विरह का उदाहरण है क्योंकि यह पूर्वराग की अवस्था में है। यह चार प्रकार का होता है : प्रत्यक्ष दर्शनजनित, चित्र-दर्शनजनित, स्वप्न-दर्शनजनित और गुण-श्रवणजनित। यहाँ प्रत्यक्ष दर्शनजनित पूर्वराग है क्योंकि अप्सराओं ने यहाँ मधुमालती और मनोहर को मिला तो दिया है किंतु अभी विवाह नहीं हुआ है। विरह-काल में विरही जिन मानसिक स्थितियों से गुज़रता है उन्हें विरह-दशा

या कामदशा कहते हैं। ये क्रम से इस प्रकार हैं : अभिलाषा, चिंता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण। कुछ लोग मरण को कामदशा न मानकर कुल नौ ही कामदशाएँ मानते हैं और कुछ लोग मूर्च्छा को मिलाकर ग्यारह कामदशाएँ मानते हैं। नाम से ही इनका लक्षण स्पष्ट है। ये विरही की मानसिक दशा के सच्चे परिचायक हैं। मधुमालती के उपर्युक्त विरह-वर्णन में अभिलाषा, चिंता, स्मृति और उद्वेग कामदशाएँ देखी जा सकती हैं।

मधुमालती के विरह के इस वर्णन में केवल शास्त्रीय तत्त्व ही द्रष्टव्य नहीं हैं, इनमें पर्याप्त मार्मिकता भी है। यह वर्णन मधुमालती की विरहोत्कंठा का बड़ा सच्चा, स्वाभाविक और सजीव चित्र प्रस्तुत करता है। विरहोत्कंठिता मधुमालती यहाँ साकार हो उठी है।

विरह-विदग्धा मधुमालती को दिखाने के बाद कवि पाठक को मनोहर के पास ले चलता है जो मधुमालती के ही समान विरह में जल रहा है। मनोहर की दशा देखिए :

जहां कुंवर जौ देखइ जागी।
जगतैं बिरह आगि तनु लागी।
....
मुरछि परै औ दहुं दिसि जोवै।
खिन खिन ऊभि सांस लै रोवै।
औ चित चेत न सकै संभारी।
मन गुनि गुनि सुधि पेम पियारी।
संवरि संवरि मधुमालति बाता।
बिरह अनल ब्यापेउ सभ गाता।
कबहुं चेत चित चेतै कबहुं जाइ बिसंभार।
सीस पुहुमि हनि रोवै समुझि रूप गुन नारि।।

मधुमालती की सारी आकुलता उसके अंतर में है, उसकी शारीरिक दशा में वह नहीं आयी है। यह इसलिए है कि एक तो नारी में स्वाभाविक लज्जा होती है दूसरे, उसे कुल की लाज का भी ध्यान है। किंतु मनोहर विरह की जिस आग में जल रहा है वह सबकी आँखों के सामने है। वह कभी होश में रहता है तो कभी बेहोश हो जाता है। वह दशों दिशाओं में देखता है कि कहीं तो मधुमालती दिख जाय। प्रिया का स्मरण कर वह अपने को संभाल नहीं पा रहा है। प्रिया की बातों का स्मरण कर-कर उसके शरीर में विरह की ज्वाला धधकने लगती है। वह धरती पर सिर पटक-पटककर रोता है। तात्पर्य यह है कि मधुमालती का उद्वेलन उसके कथन से व्यक्त होता है किंतु मनोहर की अवस्था उसकी शारीरिक चेष्टाओं से व्यक्त हो रही है। शास्त्रीय दृष्टि से मनोहर

के विरह के इस वर्णन में स्मृति आदि संचारी और मूर्च्छा कामदशा है। सामान्य दृष्टि से यह वर्णन स्वभाविकता की सीमा से बहुत दूर नहीं है। यह वर्णन वहुत दूर तक चला है। मनोहर की दशा ऐसी हो गयी है कि वैद्य और गुणी को वुलाना पड़ा है। इस वर्णन में व्याधि कामदशा देखी जा सकती है। इस विस्तृत विरह-वर्णन में एक स्थान पर मनोहर का कथन है :

पेम अगिनि जेहिं जिय उदगरई।
प्रीतम राखि और सभ जरई।।

मनोहर अपनी विरहाकुलता का वर्णन करता हुआ सहजा नाम की धाय से यह वात कहता है। यहाँ जिस प्रीतम की बात कही जा रही है वह अलौकिकता का ही संकेत देता है। हृदय में ईश्वरीय प्रेम के उदित हो जाने पर सभी लौकिक कामनाएँ जल जाती हैं।

पेमां के साथ वार्तालाप में मनोहर की विरह-व्यथा फिर दिखायी पड़ती है। पेमां से वह कहता है :

पेमां जिउ न रहा मोहि गाता।
बिनु जिय भा बकलत हौं बाता।
बिरह पिरम किछु जानि न पाएउं।
जगत जानु ठग लाडू खाएउं।
लाभ मूर खति प्रापति बारा।
एक रहेउ घट जीउ हमारा।
अचक बिरह चिनगी उर परी।
लाभ मूर खति प्रापति जरी।
नैन अमिअ जइ पिया रसारा।
नाउं संतोख जियहि किमि बारा।
अमिय रूप प्रीतम निसि बासर नैननि पिया जौ होइ।
संवरि संवरि दहुं कैसें कहु मन धिरइय सोइ।।

मनोहर की यह विरहानुभूति केवल उसकी दीन दशा को ही व्यक्त नहीं करती, वरन् पाठक के हृदय को भी छूती है। मनोहर को जब यह आशा बॅधती है कि पेमां उसको मधुमालती से मिला सकती है तो उसका धैर्य समाप्त हो जाता है और आर्त्तता-वश पेमां के पैर पर सिर रखकर रोने लगता है :

पेमां पावं सीस धरि रोवा।
नैन सलिल बिधु बदनी धोवा।

मनोहर का यह आचरण किंचित् मर्यादाविरुद्ध प्रतीत हो सकता है, पर यहाँ उसकी

जो आर्त्तता व्यक्त हो रही है वह अनुमान से परे नहीं है। कोई भी सहृदय उसकी मनोदशा को सहज ही समझ सकता है।

मनोहर की दशा दिखाने के वाद कवि मधुमालती की दशा दिखाता है। पेमां ने जव मनोहर का नाम लिया तो मधुमालती ने पहले उसके साथ अपने प्रेम को छिपाना चाहा। यह भी बड़ा स्वाभाविक है। किंतु जैसे ही मधुमालती को मालूम हो गया कि पेमां सब कुछ जानती है, उसकी विरह-भावना वैसे फूट पड़ती है जैसे उमड़ती हुई नदी बाँध तोड़कर वहने लगे। मधुमालती पेमां से अपनी विरह-व्यथा इस प्रकार कहती है :

कठिन बियोग अधिक जिय पीरा।
निलज जीउ जो रहै सरीरा।
कौनि घरी सो अही सभागी।
मोहि ओहि पेम प्रीति जेहिं लागी।
मैं न जरिउं एकसर तेहि आगी।
कौन सो जग जेहि जीय न लागी।
अब लहि गुपुत जरिउं तेहि आगी।
अब परगट भै दहुं दिसि लागी।
गुपुत जरौं कहवां लहि चोरी।
परगट जरी दसौ दिसि होरी।

एक ओर तो मधुमालती का विरह ऐसा है कि दसों दिशाओं में उसे विरह की होली जलती हुई दिखायी पड़ रही है दूसरी ओर उसे इस बात का भी ध्यान है कि अकेली एक वही विरह की आग में नहीं जल रही है, यह तो संसार की रीति है, संसार में सबको विरह में जलना पड़ता है। मधुमालती का यह मानसिक संतुलन उसके व्यक्तित्व को उदात्त बना देता है और उसके विरह को एक गरिमा प्रदान करता है। मनोहर में इस मानसिक संतुलन का अभाव है। उसमें भावुकता ही भावुकता है। पेमां ने जैसे ही अपनी एक सखी के द्वारा मनोहर को यह संवाद दिया कि मधुमालती मिलने आ रही है वैसे ही मनोहर की दशा इस प्रकार की हो गयी :

जबहीं सखि मधु नाउं सुनावा।
दरसेउ सुनतहि सात्तिक भावा।
कंप भाउ मुख आउ न बैनां।
चितहिं चेत गा झांपे नैनां।
ढरै अगिनि महं जैसें रांगा।
तिमि नितेज भा अस्टौ आंगा।

यहाँ व्याधि कामदशा और व्याधि संचारी हैं। यहाँ जो शास्त्रीय तत्त्व हैं वस वही

है। यह वर्णन पाठक में केवल कुतूहल पैदा करता है, उसके मर्म को नहीं छूता। इसके विपरीत मधुमालती की विरह-दशा स्वाभाविक और मार्मिक है तथा पाठक को अभिभूत करती है। मधुमालती की माता रूपमंजरी पेमां को अपनी पुत्री की दशा बता रही है :

कहेसि फुरहिं यह संतत रोवै।
विथा लाजि मोहि सेउं यह गोवै।
कबहुं चक्रित होइ चहुं दिसि देखा।
कवहुं मौन होइ रहै अलेखा।
कबहुं सीस धरि बैसि तंवाई।
कबहुं ठाढ़ पुनि हंसै हंसाई।
कबहुं कहै दरपन सेउं वैनां।
कबहुं रुहिर भरि आवहिं नैनां।
कबहुं देवस चारि अन छाड़ै कबहुं रोवै दुख गोइ।
कबहूं बारी विरह बियाकुलि वदन ढांकि रहै सोइ।।

मधुमालती की दशा वहुत स्वाभाविक है। लाज के मारे अपनी विरह-व्यथा वह अपनी माँ को भी नहीं बताती है। पीड़ा को दबाने पर वह मानसिक विकृति के रूप में प्रकट होती है। मधुमालती की भी यही अवस्था हो गयी है। वह कभी तो सिर पकड़कर बैठ रहती है और कभी खड़ी होकर हँसने लगती है, कभी तो वह दर्पण से बात करती है और कभी उसकी आँखों में रुधिर भर आता है। कभी चार दिन अन्न ही छोड़ देती है तो कभी मुँह ढँककर सो रहती है। मधुमालती उन्माद कामदशा में पहुँच गयी है। मधुमालती की यह विरह-दशा पाठक को द्रवित कर देती है।

द्वितीय मिलन के अवसर पर सुप्तावस्था में जब रूपमंजरी की आज्ञा से दोनों को अलग-अलग करके मनोहर को कनकगिरि और मधुमालती को महारस नगर में डाल दिया गया तब मधुमालती की जो दशा हुई है वह देखने योग्य है :

मधुमालति जौ सोवति जागी।
बिरह अगिनि नख सिख तन लागी।
ऊभि सांस हिय गह भरि आवै।
तजि लज्या चखु रुहिर बहावै।
नैन भरनि भरि धार जो छूटी।
सैन पूरि जनु वीर बहूटी।
जवहीं दसन डफारत खोला।
दामिनि चमंकि चमंकि जनु बोला।
मुकुलित केस रैनि अंधियारी।

सहज भाउ भादौं झपकारी।
रुदन करति मधुमालति बिरह विथा तन साल।
लोगन्ह अचरिजु भा यहु भारी अब दुइ वरखा काल।।

मधुमालती के नेत्रों से रुधिर की धारा इस प्रकार फूट पड़ी है जैसे भरणी नक्षत्र में वर्षा की धारा छूट पड़ती है। भरणी नक्षत्र में बीरवहूटी नाम का लाल रंग का एक कीट सर्वत्र दिखायी पड़ता है। मधुमालती की आँखों से रक्त की जो धारा छूटती है उससे उसकी शय्या लाल हो गयी है जैसे वह बीरबहूटी से भर गयी हो। जब वह डफार मारकर रोती है तो लगता है कि उसके दाँतों के बहाने बिजली ही चमक-चमक कर बोलती है। उसके खुले केश भादो की अंधियारी रात की सृष्टि कर रहे थे। इधर रुदन करती हुई मधुमालती को विरह-व्यथा साल रही थी उधर लोगों को आश्चर्य हो रहा था कि अब दो बार वर्षा ऋतु होने लगी है।

यहाँ मधुमालती के विरह का वर्णन ऊहात्मक हो गया है, इसमें कोई संदेह नहीं। अश्रु-प्रवाह के लिए रुधिर प्रवाहित होने की बात कहना असंगत प्रतीत होता है क्योंकि अश्रु और रुधिर में किसी प्रकार का साम्य नहीं। किंतु जायसी ने भी रत्नसेन के विरह का वर्णन करते हुए आँखों से रक्त की धारा वह चलने और उसका फल प्रकृति के विभिन्न अंगों पर पड़ने की बात कही है :

नैनहिं चली रक्त कै धारा
कंथा भीजि भएउ रतनारा।।
सूरुज बूड़ि उठा होइ ताता।
औ मजीठ टेसू बन राता।।
भा बसंत, राती बनसपती।
औ राते सब जोगी जती।।
भूमि जो भीजि भएउ सब गेरू।
औ राते तहँ पंखि पखेरू।।
राती सती, अगिनि सब काया।
गगन मेघ राते तेहि छाया।।
ईंगुर भा पहार जौ भीजा।
पै तुम्हार नहिं रोवँ पसीजा।।

मंझन ने अश्रुधारा को रक्तधारा तो कहा परतु जायसी के समान उसके प्रभाव का ऊहात्मक वर्णन नहीं किया। मंझन के इस विरह-वर्णन में न तो पूरी ऊहात्मक कल्पना हुई और न साफ़ विम्ब ही उभर सका। यह वर्णन अटपटा होकर रह गया है। माता के द्वारा पंछी बना देने के बाद भी मधुमालती की विरहावस्था का वर्णन कवि ने किया है :

पीतम पीतम मधु जिय भजा।
मधुमालति सभ धंधा तजा।
छाड़ेउ मया मोह सयंसारा।
छाड़ेउ कुटुंब लोग परिवारा।
छाड़ीं सखीं संघ जो खेली।
छाड़ेउ रहस चाउ सुख केली।
छाड़ेउ भोग भुगुति जिय आसा।
छाड़ेउ मंता पिता घर बासा।
छाड़ेउ अरथ दरब सभ आथी।
छाड़ेउ जन परिजन संघ साथी।
छाड़ेउ राजपाट सुख सेज्या रैनि नींदि दिन भूंख।
छाड़ेउ चित्त चाउ सुख कीन्ह बसेरा रूख।।

यह विरह-वर्णन अवश्य ही केवल समझ में आनेवाला ही नहीं, वरन् प्रभावित और द्रवित करनेवाला है। इस प्रकार सब कुछ त्यागकर प्रिय को खोजने के लिए उसने जो उत्कट प्रयत्न किया है उसका वर्णन और भी मार्मिक है।

ताराचंद के प्रयत्न से मधुमालती जब पक्षी से फिर नारी हो गयी तो उसने अपनी बालसखी पेमां को मनोहर से मिला देने के लिए पत्र लिखा। पत्र में उसने अपना विरह-निवेदन किया है और श्रावण मास से लेकर आषाढ़ मास तक की अपनी विरह-व्यथा उसने विस्तार से लिखी है। यह प्रकरण भी बड़ा मार्मिक है और कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। इसका पहला महत्त्व तो यह है कि मधुमालती की विरहाकुलता को विभिन्न आसंगों में दिखाया गया है। इसका दूसरा महत्त्व यह है कि इस बहाने कवि ने प्रकृति-पर्यवेक्षण का अच्छा परिचय दिया है।

मनोहर और मधुमालती के विरह-वर्णन के साथ कवि ने ताराचंद के भी विरह का वर्णन किया है। झूला झूलती हुई पेमां को देखते ही ताराचंद की जो स्थिति हो जाती है वह देखने योग्य है :

झूलत उर आंचर उधिरानां।
देखि कुंवर चित गएउ गियानां।
सिहुन जो अहे उठत उर उभे।
बरबस कुंवर नैन गै चुभे।
परत दिस्टि जिउ लै गे हरी।
विनु जिउ कया पुहुमि खसि परी।
जिउ बसि नैन परबस भो धर धरती विसंभार।
जस कोइ सांप डसा तस कांपै बकत न सकै उघारि।।

शास्त्रीय दृष्टि से यह प्रत्यक्ष दर्शनजन्य पूर्वरागहेतुक वियोग का उदाहरण है। इसमें व्याधि कामदशा और अपस्मार संचारी है। ताराचंद के इस विरह-वर्णन में शास्त्रीय तत्त्व मिल रहे हैं, इसमें संदेह नहीं किंतु इसमें पाठक को द्रवित करने की क्षमता का अभाव है।

इस विवेचन के उपरांत *मधुमालती* के विरह-वर्णन की विशेषताओं को रेखांकित किया जा सकता है। *मधुमालती* में नायक और नायिका, दोनों के विरह का वर्णन हुआ है। मात्रा की दृष्टि से दोनों के विरह-वर्णन में संतुलन है और दोनों का विरह क्रम से दिखाया गया है। दूसरी बात, यहाँ जिस विरह का वर्णन हुआ है वह पूर्वरागजनित विरह है। तीसरी बात, *मधुमालती* में विरहानुभूति की व्यंजना तो है ही, विरह के विषय में चिंतन भी है और वह पर्याप्त मात्रा में है। चिंतन में विरह के आध्यात्मिक पक्ष को उभारा गया है। निष्कर्ष यह है कि *मधुमालती* में लौकिक विरह के माध्यम से अलौकिक विरह को उजागर किया गया है।

मधुमालती में रूप-वर्णन

प्राचीन काव्य में नायिका के एक-एक अंग को लेकर उसकी विशिष्टता को रेखांकित किया गया है। इस प्रकार के रूप-वर्णन नख अर्थात् चरण से आरम्भ करके शिर तक के विभिन्न अंगों का वर्णन करके होता है, अतः वह नख-शिख-वर्णन कहा जाता है। लौकिक पात्रों का रूप-वर्णन शिर से आरम्भ करके नख तक के विभिन्न अंगों का वर्णन करके होता है, अतः शिख-नख-वर्णन कहलाता है। किंतु सूफ़ी प्रेमाख्यानकों में इसका पालन नहीं किया गया है। वहाँ नायिका अलौकिक सत्ता की प्रतीक होकर आयी है तथापि उसमें शिख-नख के रूप में ही सौंदर्य-वर्णन है। *मधुमालती* के साथ भी यही बात है।

मधुमालती में दो स्थलों पर यह शिख-नख-वर्णन है। प्रथम स्थल पर मधुमालती का (77-97) और द्वितीय स्थल पर पेमां का (479-484) रूप-वर्णन हुआ है। मधुमालती का रूप-वर्णन सम्भोग शृंगार के अंतर्गत है क्योंकि नायक (मनोहर) मधुमालती को प्रत्यक्ष देखता हुआ उसके अंग-प्रत्यंग के सौंदर्य को निरख रहा है। पेमां का रूप-वर्णन विप्रलम्भ शृंगार के अंतर्गत माना जायेगा क्योंकि नायक (ताराचंद) पेमां के परोक्ष में उसके रूप का वर्णन कर रहा है। इस प्रकार *मधुमालती* में नायक से नायिका का रूप-वर्णन कराकर रूप वर्णन को अधिक प्रामाणिक बना दिया गया है। कारण, नायिका के सौंदर्य को नायक की आँखों से देखना ही उचित है।

मधुमालती के शिख-नख-वर्णन और पेमां के शिख-नख-वर्णन में एक मौलिक अंतर है। चूँकि मधुमालती का रूप-वर्णन संयोग-काल में हो रहा है, इसलिए उसके अंगों की शोभा आकर्षण उत्पन्न करनेवाली है। इसके विवपरीत पेमां की अंग-शोभा विरह को उद्दीप्त करनेवाली है। पेमां की माँग-रूपी तलवार से ताराचंद आहत हो गया है, उसके चिकुर-रूपी नाग ने उसको डँस लिया है, उसका अधरामृत ताराचंद के लिए अंगार हो रहा है, पेमां की ग्रीवा की तीन रेखाएँ ताराचंद के नयन-मृगों के लिए फाँसी हैं और पेमां की हत्यारी जाँघों ने ताराचंद को इतना लताड़ा है कि उसीसे पेमां के तलवे लाल हो गये हैं ! मधुमालती और पेमां के रूप-वर्णन में यह अंतर रखना मंझन की सूझ का

परिचायक है। मधुमालती का रूप-वर्णन पहले हुआ है और विस्तारपूर्वक हुआ है, पेमां का रूप-वर्णन वाद में हुआ है और संक्षिप्त है। सम्भावना थी कि पेमां के रूप-वर्णन में कवि अपने को दुहराता। मंझन ने थोड़ा ऐसा किया भी है। फिर भी, पेमां के रूप-वर्णन की भिन्नता वनी हुई है। मंझन के कवि-सामर्थ्य का एक प्रमाण यह भी है।

मधुमालती और पेमां दोनों के शिख-नख-वर्णन का आरम्भ रूप के प्रभाव-वर्णन से हुआ है। दोनों स्थलों पर रूप का प्रभाव भी एक ही समान पड़ा है। मनोहर और ताराचंद, दोनों क्रमशः मधुमालती और पेमां के अपूर्व सौंदर्य से पहले मूर्च्छित हो गये हैं और होश में आने पर उनके आंगिक सौंदर्य का निरीक्षण किया है। यह भी बड़ा स्वाभाविक है। किसी सुंदरी पर दृष्टि पड़ते ही व्यक्ति उसके एक-एक अंग को बारी-बारी से नहीं देखता। किसी भी व्यक्ति का सौंदर्य पहले अपने समग्र प्रभाव से ही किसी दर्शक को अभिभूत करता है। मंझन इस रहस्य से अवगत हैं। मंझन यह भी जानते हैं कि एक-एक अंग का अलग-अलग वर्णन करने से सुंदरी का रूप-वर्णन अधूरा ही रहेगा। इसीलिए शिख-नख-चित्रण समाप्त करके वे कहते हैं :

बिनु कटाछ बिनु भाउ सिंगारा।
सूती सेज बरनि को पारा।
जो बिधि सिरजी पुब्ब अनूपीं।
सहज ते बाझु सिंगार सरूपीं।
सगरी सिस्टि केर अहिवाता।
लज्यावंत मदन सभ गाता।

मधुमालती की सुप्तावस्था में उसके रूप का वर्णन हुआ है। इसीलिए मंझन कहते हैं कि विना कटाक्ष के, विना शृंगारिक हाव-भाव के सोयी हुई नारी के सौंदर्य का वर्णन कैसे हो सकता है। मंझन का अभिप्राय यही है कि भिन्न-भिन्न अंगों की बनावट पर नारी का आकर्पण निर्भर नहीं है। उसका आकर्षण तो समग्र शरीर में व्याप्त रहता है। इसीलिए वे कहते हैं कि समग्र सृष्टि की सौभाग्य मधुमालती के सम्पूर्ण शरीर में काम व्याप्त था। तात्पर्य यह है कि मंझन को रूप की सच्ची परख थी।

कवि का ध्यान अंगों के सौंदर्य पर ही नहीं, अंगों के प्रकार्य अथवा धर्म पर भी गया है। मधुमालती की नासिका के वर्णन में मंझन कहते हैं :

निकट न कोउअ संचरै पारा।
निसि दिन जियै सो बास अधारा।

उसके निकट कोई संचरण नहीं कर पाता है और वह दिन-रात वास (सुवास) के आधार पर जीती है। नासिका से वायु निःसृत होती रहती है, कदाचित् इसीलिए मंझन कहते हैं कि उसके निकट कोई संचरण नहीं कर पाता है। और, नासिका के सुगंध

पर जीने की बात तो स्पष्ट ही है। इसी तरह उपमान के लिए कवि ने वस्तु और क्रिया, दोनों को ग्रहण किया,है। मुख के लिए चंद्रमा तो प्रसिद्ध उपमान है ही। मुख के ऊपर काले केशों की जो पाटी है उसको चित्रित करने के लिए कवि ने कहा है कि ऐसा मालूम पड़ता है मानो शशि (मुख) और निशि (पाटी) में विपरीत रति हुई हो :

तर मयंक ऊपर तिसु पाटी वनी अहै कसि रीति।
जानहु ससि औ निसि सेउं भई सुरति बिपरीति।।

विपरीत रति के उल्लेख में किंचित् मांसलता अवश्य है, इसमें कोई संदेह नहीं किंतु बिम्ब बड़ा सटीक है, इसमें भी कोई संदेह नहीं।

शिख-नख-अथवा नख-शिख-वर्णन में प्रायः उपमानों का अम्बार लगा दिया जाता है और उपमान भी परस्पर असम्बद्ध होते हैं जिनसे कोई चित्र नहीं उभरता। पर मंझन के साथ ऐसी बात नहीं है। उन्होंने अंग-प्रत्यंग के उपमान ही नहीं जुटाये हैं वरन् एक संश्लिष्ट चित्र की सृष्टि की है। मधुमालती के ललाट का वर्णन द्रष्टव्य है। मधुमालती सोयी हुई है। सुप्तावस्था में ललाट पर पसीने की बूँदें अभर आती हैं। कवि कहता है कि ऐसा लगता है मानो कचपचिया (आकाश में पूर्व की ओर दिखायी पड़नेवाला छोटे-छोटे तारों का एक समूह) ने चंद्रमा को ग्रस रखा है । मधुमालती के ललाट पर कस्तूरी का तिलक भी है। कवि का कहना है कि चंद्रमा राहु के वश में पड़ गया है। तात्पर्य यह है कि कवि जब ललाट को देखता है तो उसकी दृष्टि केवल ललाट पर ही नहीं है वरन् उसपर झलकते हुए स्वेद-बिंदुओं को भी वह देखता है तथा उसपर कस्तूरी से अंकित तिलक को भी वह अनदेखा नहीं करता। इस तरह ललाट का एक संश्लिष्ट चित्र कवि ने प्रस्तुत किया है।

मंझन के शिख-नख-वर्णन की यह विशेषता है कि वे केवल उपमानों का ढेर ही नहीं लगाते, अपनी अनुभूतियों की भी व्यंजना करते चलते हैं। बरौनियों का वर्णन करते हुए वे कहते हैं कि बरौनी के बाणों के लगते ही मैं अपने प्राणों की रक्षा नहीं कर सका। और, नासिका के स्वरूप का वर्णन मैं नहीं कर पा रहा हूँ क्योंकि तीनों लोकों में देखकर मैं हार गया, उसके लिए कोई उपमान ही नहीं मिला। उसे मैं सुग्गे की ठोर, खड्ग की धार और तिल का फूल भी नहीं कह पा रहा हूँ :

वरुनि बान के मारत मैं न सकेउं जिउ लेखि।
केहि न मिरितु जिय भावै वरुनि सोहागिनि देखि।
नांक सरूप न बरनै पारीं। तीनिउं भुवन हेरि कै हारीं।
कीर ठोर औ खरग कै धारा। तिलक फूल मैं बरनि न पारा।

इस योजना से मंझन का रूप-वर्णन उपमानों की सूची होने से बच गया है।

मधुमालती के रूप-वर्णन में कवि की कल्पना-शक्ति और वर्णन-क्षमता के दर्शन

अनेकत्र होते हैं। कवि उरोजों का वर्णन करता हुआ कहता है :

सोभित दिए स्याम सिर बाने।
महाबीर त्रिभुवन जग जाने।
दुवौ सींव पर चाहहिं लरा।
हार आइ तब अंतरु परा।
दुवौ बीर कुच जूह जुझारा।
सोभहिं आनि सुनहिं रन मारा।
अैने बैने अस तिनक सुभाऊ।
संतत सौंह न पाछें काऊ।

दोनों कुच सिर पर श्याम बाना दिये हुए शोभा पा रहे हैं। दोनों तीनों लोकों में विश्वविदित महावीर हैं। दोनों सीमा पर आकर लड़ना चाहते हैं किंतु दोनों के बीच में हार आ पड़ा। दोनों वीर कुच युद्ध में जूझनेवाले हैं और युद्ध की बात सुनते हैं तो शोभा पाने लगते हैं। जैसे-तैसे प्रहार करना उनका स्वभाव है। दोनों सदा आमने-सामने रहते हैं और उनमें से कोई कभी पीछे नहीं पड़ता। यहाँ पाठक चित्र की रमणीयता पर मुग्ध न होकर कवि की विलक्षण कल्पना से चमत्कृत होता है। योद्धा के रूप में उरोजों की कल्पना निस्संदेह मनोरंजक है। पेमां के उरोज भी प्राण ले लेनेवाले वीर हैं और वे भी आपस में लड़ पड़ते यदि उनमें बीच का हार पकड़नेवाला नहीं होता :

बिबि कुच स्याम छत्र सिर दीते।
गड़े आइ नैनन्हि अनचीते।
लरते दुवौ बीर जिउ हरिया।
जौ न हार होत बिच धरहरिया।

मधुमालती की कटि का वर्णन भी इसी तरह मनोरंजक है। देखिए :

लंक झीनि देखि जिउ डरई।
भार नितंब टूटि जनि परई।
छुइ न जाति कत हाथ पसारी।
मंत छुवतहिं टूटहि हतियारी।
टूटि परति करि कामिनि गरुव नितंब के भार।
जौ न होत दिढ़ बंधन कीन्हे त्रिबली तासु अधार।।

इसकी क्षीण कटि को देखकर जी में डर लगता है कि नितम्ब के भार से कहीं टूट न जाय। यह इतनी सूक्ष्म है कि कितना भी हाथ पसारिए, यह छूने में नहीं आती और यह डर भी लगता है कि यह हत्यारी छूते ही कहीं टूट न जाय। कामिनी की कटि नितम्बों के भार से टूट ही पड़ती यदि त्रिवली कसकर उसे बाँधे नहीं होती। यहाँ भी

कवि की कल्पना-शक्ति और वर्णन-क्षमता के दर्शन होते हैं।

पेमां की आँखों का वर्णन भी कम मनोरंजक नहीं है। उसमें मंझन की कल्पना भी देखने योग्य है :

नैन रेख काजर कै दीखि सोभ कस देइ।
जानहु लोयन सवन सेउं आए मंता करेइ।।

नैनों में पड़ी काजल की रेखा की शोभा कैसी दिखायी पड़ती है मानो लोचन मंत्रणा करने के लिए कानों के पास गये हों। यह वर्णन निश्चय ही उत्कृष्ट है। रूप-वर्णन की जो विशेषता है चित्रात्मकता वह यहाँ उत्तम रूप में देखी जाती है। काजल लगी हुई कजरारी आँखें यहाँ मूर्त हो उठी हैं। साथ ही यहाँ कल्पना का भी चमत्कार द्रष्टव्य है। आँखों का कानों से मंत्रणा करने की बात सहृदय को चमत्कृत किये विना नहीं रह सकती।

कहीं-कहीं पर केवल कल्पना की उड़ान ही देखने को मिलती है, वह वर्णन न तो कोई चित्र प्रस्तुत करता है और न पाठक को रूप-विभोर ही कर पाता है। उदाहरणार्थ, मधुमालती की भौंहों का वर्णन देखा जाय :

काम कमान रहसि कर लीन्हें।
बर सेउं तोरि टूक दुइ कीन्हें।
विनु रस सेउं धरि मेलि अडारे।
सोइ बनाइ मधु भौंह संवारे।
भौंह नेवासि सोह कस बारी।
मदन धनुक जनु धरा उतारी।
जौ चखि चढै भौंह बर नारी।
इंद्र धनुक दइ पनच अडारी।
तेहिं धनु मदन तिरभुवन जीता।
बहुरि उतारि नारि कहं दीता।
जीति त्रिलोक नेंवासि भौ रहा न जगत जुझार।
देखत जाहि हियें सर निकरै तेहि को जीतै पार।।

काम ने हर्षपूर्वक धनुष हाथ में लिया और बलपूर्वक उसे तोड़कर दो टुकड़े कर दिये। फिर विना जोड़नेवाले रस के दोनों टुकड़ों को पकड़कर मिला दिया और इस प्रकार उस धनुष को पुनः बनाकर मधुमालती की भौंहों के रूप में सँवारा। उसकी देह में निवास करनेवाली भौंहें किस प्रकार शोभा पा रही हैं मानो कामदेव ने अपना धनुष उतार कर रख दिया हो। यदि इस श्रेष्ठ नारी के नेत्रों पर भौंह चढ़ जाये तो इंद्र अपने धनुष की प्रत्यंचा डाल दे। उसी धनुष से कामदेव ने त्रिभुवन को जीता और फिर उसे

उतारकर इस नारी को दिया। वह धनुप त्रिलोक को जीतकर इस बाला के शरीर का निवासी हुआ क्योंकि जगत् में उसके सामने युद्ध करनेवाला कोई नहीं रहा। जिसको देखने मात्र से बाण हृदय से होता हुआ बाहर निकल जाय उसको कौन जीत सकता है ?

यह रूप-चित्रण हवाई है। इससे न तो कोई चित्र उभरता है और न पाठक का मनोरंजन होता है।

मंझन ने रूप-वर्णन के लिए उत्प्रेक्षा, रूपक,संदेह और यमक अलंकारों का उपयोग किया है। रूप-वर्णन के लिए सर्वाधिक उपयुक्त अलंकार उत्प्रेक्षा और रूपक होते हैं क्योंकि ये दोनों बिम्व-सृष्टि के लिए बड़े उपयोगी हैं। संदेह के द्वारा कुतूहल और यमक से चमत्कार की सृष्टि होती है। मंझन ने उत्प्रेक्षा से बिम्ब-रचना और प्रभाव-व्यंजना, दोनों कार्य लिये हैं। एक उदाहरण इस प्रकार है :

स्याम रैनि जस दामिनी स्याम जलद महं दीस।
सरग हुतें जनु छिटकी आइ परी त्रिय सीस।।

मधुमालती की माँग का वर्णन है। मंझन कहते हैं कि काली रात में काले बादलों के बीच मानो बिजली हो। काले-काले बालों के बीच में माँग की श्वेत रेखा का स्पष्ट बिम्ब इस वर्णन से उभरता है। यह चित्र प्रस्तुत कर मंझन तत्काल एक उत्प्रेक्षा की योजना कर माँग के सौंदर्य के प्रभाव को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि ऐसा मालूम पड़ता है मानो वह स्वर्ग से छिटककर इस नारी के शीश पर आ पड़ी हो।

रूप-वर्णन में मंझन ने जिससे काम लिया है ऐसा दूसरा अलंकार रूपक है। रूपक भी बिम्व-सृष्टि के लिए उत्प्रेक्षा के ही समान उपयोगी होता है। किंतु इस प्रसंग की मंझन की रूपक-योजना साधारण ही है, चमत्कारपूर्ण नहीं। इस प्रसंग का मंझन का तीसरा अलंकार है संदेह। संदेह अलंकार भी अप्रत्यक्ष रूप से चित्र-सृष्टि करता है, इसलिए अन्य कवियों ने भी रूप-वर्णन में इसका उपयोग किया है। किंतु इसका मुख्य कार्य कुतूहल पैदा करना है। मधुमालती के केशों में जो सुवास है उसको व्यक्त करने के लिए मंझन ने एक स्थान पर इसकी योजना की है :

कै जनु म्रिग मद नाभि उघारी।
कै मधु मालति चिहुर खिंडारी।

या तो मानो कस्तूरी मृग ने नाभि उघाड़ दी है या मधुमालती ने चिकुर छिटका दिये हैं। माँग के वर्णन में भी एक स्थान पर कवि ने संदेह का उपयोग किया है :

कै जनु अमिअ नदी वहि आई।
बदन चांद नहिं अमिअ सिराई।

या तो यह अमृत की नदी बह आयी है जिसके कारण मुख-चंद्र का अमृत समाप्त नहीं

होता। स्पष्ट है कि संदेह अलंकार के सहारे प्रस्तुत किये गये इन दोनों वर्णनों से न तो विम्ब की सृष्टि होती है, न चमत्कार की। मधुमालती के नेत्रों के वर्णन में कवि ने यमक का उपयोग किया है :

अचिजु एक का वरनौं बरनत वरनि न जाइ।
जनु सारंग सारंग तर निभरम पौढ़े आइ।।

सार्थक होने पर भिन्न अर्थवाले स्वर-व्यंजन-समुदाय की क्रमशः आवृत्ति में यमक होता है। यहाँ 'सारंग' शब्द की आवृत्ति हुई है। प्रथम 'सारंग' (शार्ङ्ग) का अर्थ है मृग और द्वितीय 'सारंग' (शार्ङ्ग) का अर्थ है धनुष। मृग आँख का और धनुष भौंह का उपमान वनता है। इसीलिए भौंहों के नीचे स्थित नेत्रों के लिए मंझन कहते हैं कि ऐसा मालूम पड़ता है, मृग धनुष के नीचे निडर होकर लेटे हों। यह कल्पना चमत्कार की सृष्टि तो कर रही है, विम्ब की सृष्टि नहीं कर पा रही है। सारांश यह है कि मंझन के रूप-वर्णन के साधनों में अलंकारों का एक स्थान अवश्य है, पर उनमें केवल उत्प्रेक्षा की योजना ही काम की है।

मंझन के रूप-वर्णन पर विचार करते हुए एक बात पर ध्यान जाता है। माँग के वर्णन में कवियों ने रक्त की वात लिखी है क्योंकि विवाहिता नारी की माँग में लाल रंग का सिंदूर लगा रहता है। मंझन के ध्यान में यही बात है। फलतः उन्होंने मधुमालती और पेमां, दोनों की माँग के वर्णन में रक्त का उल्लेख कर दिया जबकि उस समय तक दोनों अविवाहिता थीं। मधुमालती की माँग का वर्णन करता हुआ कवि कहता है :

अति सोभित सिर मांग सोहाई।
खरग धार जनु रगत बसाई।

सिर में माँग बहुत शोभा पा रही थी मानो खड्ग की धार पर रक्त बैठा हुआ हो। इसी तरह पेमां की माँग को कवि ने लहूलुहान वता दिया है :

लोहुलुहान सिर देखिउं खरी।

ताराचंद के द्वारा पेमां का रूप-वर्णन कराया जा रहा है। वह कहता है कि उसका सिर मुझे लहूलुहान दिखायी पड़ा। इस वर्णन में असंगति तो है ही, कुरुचि भी है। पर ऐसे असंगत अथवा असमर्थ वर्णन के स्थल अत्यल्प हैं। *मधुमालती* के रूप-वर्णन में कवि की रमणीय कल्पना के दर्शन ही अधिक होते हैं। मधुमालती के उरोजों का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है :

जबहिं हिरदैं हिरदैं संचरे।
कुच आदर कहं उठ भै खरे।
....

जबहिं प्रानपति हियरे छाए।
कुच सकोच उठि वाहेर आए।

उन्नत और उभरे हुए उरोजों के विषय में यहाँ दो कल्पनाएँ की गयी हैं। कवि की पहली कल्पना यह है कि हृदय में हृदय का पदार्पण होने पर आदर में ये कुच उठ खड़े हुए हैं। जब कोई आदरणीय व्यक्ति घर में आता है तो गृहवासी आदर में खड़ा हो जाता है। मंझन कल्पना करते हैं कि यौवनकाल में मन में कामभाव का संचार हो ही जाता है और तब युवती के मन में उसकी कल्पना का प्रिय आ जाता है। उसी प्रिय-हृदय के आगमन पर आदर में ये कुच खड़े हो गये हैं। दूसरी कल्पना से इसकी पुष्टि हो जाती है। मंझन कहते हैं कि जब प्राणपति हृदय में आ गये तो संकोच के कारण दोनों कुच बाहर आ गये। मंझन की यह कल्पना निस्संदेह रमणीय है।

निष्कर्ष-स्वरूप कहा जा सकता है कि मंझन के रूप-वर्णन में कल्पना का वैभव सर्वत्र दिखायी पड़ता है। यही नहीं, रूप-वर्णन की जो भी विशेषताएँ हो सकती हैं वे सभी न्यूनाधिक रूप में *मधुमालती* के रूप-वर्णन में द्रष्टव्य हैं।

मधुमालती के रूप-वर्णन में अलौकिक उपमानों को देखकर उसमें आध्यात्मिकता और सूफ़ी दर्शन को ढूँढ़ने की चेष्टा की गयी है। जैसे मधुमालती की माँग का निम्नांकित वर्णन है :

उतपति सुनहु मांग के भाऊ।
सरग पंथ अति बिकट चढ़ाऊ।
देखत मांग चिहुर कर भावा।
खिन भुलाइ खिन मारग पावा।

मधुमालती की माँग स्वर्ग-पथ की विकट चढ़ाई है। माँग और चिकुर का भाव देखकर मनोहर एक क्षण अपने को भूल जाता था और एक क्षण मार्ग पा जाता था। सच पूछा जाय तो इस प्रकार का वर्णन अत्युक्ति ही कहे जाने योग्य है। इसमें आध्यात्मिक भाव ढूँढ़ना व्यर्थ है।

मंझन का जीवन-दर्शन

जीवन-दर्शन का अर्थ है जीवन और जगत् एवं इहलोक और परलोक के विभिन्न पक्षों के सम्बन्ध में दृष्टिकोण अथवा विचार। यह प्रत्येक व्यक्ति के पास होता है। इसलिए दर्शन के होने या न होने का प्रश्न नहीं होता। प्रश्न यह होता है कि वह दर्शन कैसा है। कवि समाज का सर्वाधिक जागरूक प्राणी होता है, इसलिए उसका दर्शन विचारणीय हो जाता है। मंझन एक समर्थ कवि थे। अतः उनका जीवन-दर्शन भी महत्त्वपूर्ण है। जीवन और जगत् के विविध पक्षों पर उनके विचार इस प्रकार हैं :

सृष्टि

सृष्टि के सम्बंध में मंझन का विचार है कि विधाता ने पहले स्वयं अपनी और बाद में समस्त जगत् की सृष्टि की और यह सृष्टि उसने मुहम्मद के लिए की। इस तरह मुहम्मद मूल हुए और समस्त जग उनकी शाखा हुआ :

सइहिं सरीर सिस्टि जौ आवा।
औरि सिस्टि सभ ओहि कर भावा।

....

नाउं मुहम्मद त्रिभुवन राऊ।
ओहि लागि भएउ सिस्टि कर चाऊ।

....

मूल मुहम्मद सभ जग साखा।

सृष्टि के सम्बंध में मंझन का यह विचार सूफ़ी सिद्धांत पर आधृत है। सूफ़ियों के अनुसार सृष्टि के द्वारा अपने को अभिव्यक्त करने की इच्छा जब परमात्मा को हुई तब परमात्मा ने अपनी ही ज्योति से एक ज्योति का निर्माण किया। वह ज्योति 'नूरे-मुहम्मद' या 'नूरे-अहमद' कही जाती है। इसी ज्योति के लिए परमात्मा ने सृष्टि की रचना की। यह ज्योति ही सृष्टि का आदि कारण है। इस ज्योति के द्वारा ही परमात्मा ने ब्रह्मांड का निर्माण किया।[1]

1. रामपूजन तिवारी, *सूफ़ीमत-साधना और साहित्य,* (वाराणसी सं. 2013) पृ. 263

परमात्मा

मंझन के अनुसार परमात्मा एक है, घट-घट वासी है, अनिर्वचनीय है, निर्गुण है, वह गुप्त होकर भी प्रकट और किसी रूप का न होकर भी अनेक रूपोंवाला है, वह संसार का कर्त्ता, हर्त्ता और विधाता है, वह अलख और निरंजन है, कहीं उसका वेश भिखारी का है तो कहीं नरेश का, जो उससे चित्त लगाता है उसी को वह अपना गुप्त रूप दिखाता है, वह आदि का भी आदि और अंत का भी अंत है, वही एकमात्र है, दूसरा कोई नहीं है और उसी के मुख में सृष्टि के समस्त रूप अंत में चले जाते हैं। *मधुमालती* के आरम्भिक पाँच-सात पद्यों में मंझन ने परमात्मा के स्वरूप का अनेक प्रकार से वर्णन किया है जिसका सारांश ऊपर प्रस्तुत किया गया है। परमात्मा के सम्बंध में मंझन के उपर्युक्त विचार इस्लाम और हिंदू, दोनों धर्मों से समर्थित हैं। इस्लाम के अनुसार परमात्मा एक है और उसके जैसा दूसरा नहीं। काल और स्थान की परिधि में वह नहीं बाँधा जा सकता। वह अपने आप में पूर्ण है, उसे किसी की अपेक्षा नहीं। वह सर्वशक्तिमान है। वह सब कुछ को जाननेवाला है। उससे बाहर न किसी प्रकार का ज्ञान है और न किसी प्रकार की सत्ता। जो कुछ भी हम देखते हैं और जिस किसी भी वस्तु का अस्तित्व है वह उसी के ऊपर निर्भर करता है। वह सर्वत्र है। वह मनुष्य के ज्ञान की सीमा के बाहर है।[2] परमात्मा के सम्बंध में इस्लाम धर्म के ये सारे विचार मंझन में द्रष्टव्य हैं। इस प्रकार मंझन ने जो कहा है उसमें से एक भी बात ऐसी नहीं है जो हिंदू धर्म के विरुद्ध पड़ती हो। इसीलिए माताप्रसाद गुप्त मंझन के परमात्मा-विषयक विचारों का विश्लेषण करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि "यह विचार-धारा मंझन को ऐसे सूफ़ी संतों की कोटि में ला बिठलाती है जो इस्लाम से लगाव रखते हुए भी भारतीय अद्वैतवाद के खुले समर्थक थे।[3] मंझन पर हिंदू धर्म का कितना प्रभाव था, यह इसीसे स्पष्ट है कि वे भी मानते हैं कि चारों वेदों का निर्माण ब्रह्मा ने किया। वाणी के महत्त्व का वर्णन करते हुए मंझन कहते हैं—

चारि वेद बिधनै निरमएऊ।

जीव

मंझन जीव और परम तत्त्व में एकत्व देखते हैं। वे जीव को सम्बोधित कर कहते हैं :

तैं जलनिधि सब निधि का भरा।
काहे मरसि गरब बस परा।

---

2. रामपूजन तिवारी, *सूफ़ीमत-साधना और साहित्य* (वाराणसी, सं. 2013 वि.), पृ. 246

3. माताप्रसाद गुप्त, *मधुमालती* (इलाहाबाद, 1961), भूमिका, पृ. 21

तोर बदन तिरभुवन अजोरा।
सकल सिस्टि मुख दरपन तोरा।
तोरिय जोति सकल परगासा।
मिर्तु लोक पाताल अगासा।
सकल सिस्टि महं परगट तुहीं।
सरबस तुइं दोसर कोई नहीं।
जो कोइ खोव सोइ (पै) जोवा
सो का जोइ जेहिं नहि किछु खोवा।
कौन सो ठाउं जहां तैं नाहीं तीनि भुवन उजिआर।
निरखि देखु तैं सरबस पूरे सब ठां तोर बेवहार।।

अर्थात् ऐ जीव ! तू जलनिधि है और तू सब निधियों से भरा हुआ है। गर्व के वश में पड़कर तू क्यों मर रहा है ? तेरे वदन से ही त्रिभुवन प्रकाशित है। सकल सृष्टि के लिए तेरा मुख दर्पण है। मृत्युलोक, पाताल लोक और आकाश में सब तेरी ही ज्योति से प्रकाशित है। समस्त सृष्टि में तू ही प्रकट है। सर्वस्व तू ही है, दूसरा कोई नहीं है। जो कोई खोता है, वही देख पाता है, जो कुछ नहीं खोता है वह क्या देख सकता है ? वह कौन-सा स्थान है जहाँ तू नहीं है ? तीनों भुवन तुझसे प्रकाशित हैं। निरखकर देख, तू सर्वस्व को पूरित कर रहा है, सभी स्थानों पर तेरा व्यवहार है।

जीव का यह वर्णन ईश्वर का ही वर्णन है। सूफियों ने दृश्यमान् जगत् को परमसत्ता की अभिव्यक्ति बताया है।[1] अतः मंझन यदि जीव को परम सत्ता के रूप में देख रहे हैं तो यह ठीक ही है।

प्रेम और विरह

प्रेम के विषय में मंझन का मत है कि प्रेम संसार में अमूल्य है, वह नग के समान है, जिसके जी में प्रेम है, उसका जन्म धन्य है, जिसके जी में प्रेम का दीपक जलता है उसका आदि और अंत प्रकाशित हो जाता है, जिसके हृदय में प्रेम की लकीर खिंच जाती है वह जहाँ भी देखता है, अदृश्य (परमात्मा) को देखता है। *मधुमालती* के भूमिका-भाग में सत्ताइसवें से लेकर तीसवें पद्य तक मंझन ने प्रेम की महत्ता का प्रतिपादन किया है। पुनः अप्सराओं के द्वारा मनोहर को मधुमालती से मिला देने के अवसर पर मनोहर ने प्रेम की महिमा का निरूपण किया है।

इसी प्रकार विरह के विषय में भी कवि ने उपर्युक्त दो स्थलों पर विस्तार से विचार

---

4. रामपूजन तिवारी, *सूफीमत-साधना और साहित्य* (वाराणसी, सं. 2013) पृ. 256

किया है। विरह के विषय में मंझन का कहना है कि सृष्टि के मूल में ही विरह है किंतु उसे बिना पूर्व जन्म के पुण्य के कोई प्राप्त नहीं कर सकता; जिसके घट में विरह का जीव रहता है वह सदा अमर रहता है तथा विरह की बुद्धि और सिद्धि अध्ययन से प्राप्त नहीं होती, दयानिधि भगवान् दया करके जिसको देते हैं, उसीको यह निधि प्राप्त होती है।

स्पष्ट है कि मंझन ने जिस प्रेम और विरह की बात कही है वह अलौकिक है। वह प्रेम और विरह जीवात्मा और परमात्मा का है। सूफ़ी-साधना में प्रेम और विरह का बहुत महत्त्व है। साथ ही, सूफी यह भी मानते हैं कि जबतक भगवत्कृपा नहीं होती तबतक साधक के हृदय में प्रेम नहीं होता।[5] मंझन ने प्रेम और विरह के विषय में जो कहा है उसका सारांश भी यही है।

ज्ञान

मंझन ने प्रेम के साथ-साथ ज्ञान को भी महत्त्व दिया है। वस्तुतः वे साधक के लिए प्रेम और ज्ञान, दोनों को महत्त्वपूर्ण मानते हैं। उनका कथन है :

जेहि जिअ परै पेम कै रेखा।
जहं देखै तहं देख अदेखा।
उपजि आव हिअं जौ पुनि ग्याना।
जहं देखै तहं आपु अपाना।
पुनि जौ ग्यान बिरिख फर देई।
सरबस दै दोसर नहिं लेई।

अर्थात् जिसके हृदय में प्रेम की रेखा पड़ जाती है वह जहाँ भी देखता है वहाँ उसी अदृश्य सत्ता (परमात्मा) को देखता है। और फिर यदि उसके हृदय में ज्ञान उत्पन्न हो जाता है तब वह जहाँ भी देखता है अपनी आत्मा को देखता है। फिर जब वह ज्ञान-वृक्ष फल देता है तब वह सर्वस्व देकर भी उस फल के अतिरिक्त किसी दूसरे पदार्थ को नहीं लेता है। मंझन के कथन से स्पष्ट है कि प्रेम तबतक पूर्ण नहीं है जबतक कि उसके साथ ज्ञान का संयोग नहीं होता। अर्थात् साधक के लिए प्रेम और ज्ञान, दोनों की आवश्यकता है।

मंझन का यह कथन भी सूफ़ी-सिद्धांत से बाहर नहीं है। सूफ़ी भी प्रेम और ज्ञान, दोनों पर बल देते हैं। सूफ़ियों का अंतिम लक्ष्य प्रेम और ज्ञान है। उनका विश्वास है कि प्रेम के द्वारा ही ज्ञान की प्राप्ति होती है किंतु ऐसा नहीं होता कि ज्ञान की प्राप्ति के साथ प्रेम की समाप्ति हो जाय। प्रेम और ज्ञान अपने विशुद्ध रूप में साथ बने रहते

---

5. रामपूजन तिवारी, *सूफ़ीमत-साधना और साहित्य* (वाराणसी, सं. 2013 वि.), पृ. 314

हैं। ऐसा भी कहा जा सकता है कि एक के बिना दूसरा सम्भव नहीं। सूफ़ी साधकों का कहना है कि परमात्मा से सचमुच वही प्रेम कर सकता है जिसे विशुद्ध ज्ञान प्राप्त हो जाय और जो सचमुच उससे प्रेम करता है वही वास्तव में उसका ज्ञान प्राप्त किये हुए है।[6] ज्ञान के सम्बंध में मंझन का विश्वास भी यही कहता है।

योग

शत्तारी सम्प्रदाय के सूफ़ियों ने योग तथा भारतीय साधना की अनेक बातों को ग्रहण किया। शत्तारी साधक भी जंगलों में फल-फूल खाकर रहते थे और हठयोग की साधना करते थे। हठयोग के यौगिक आसन और समाधि पर उनका विशेष बल था।[7] मंझन भी कहते हैं :

अब सुनु करम बात किछु आई।
निरगुन रूप बैसु लौ लाई।
तन सों उरध लेहि गहि स्वांसा।
अगिनि हीय कै डोल बतासा।
झरकै पवन अगिनि उदगरई।
तौ कलंक काया कर जरई।
तौ लहि सरब गात धुनि होई।
जौ लहि कस्ट गहें रहु सोई।
औ तेही धुनि मं करु बासा।
ताही जोति भीतर कबिलासा।
कोटि मांह बिरुला जन कोई भोगइ वह कविलास।
सुन्न मंदिल महं बास जस जहां निकंटक बेलास।।

परमेश्वर, सृष्टि, जीव, प्रेम, विरह और ज्ञान का वर्णन करने के उपरांत मंझन जीव से कहते हैं कि अब कुछ योग की बात सुन और भगवान् के निर्गुण रूप में लौ लगाकर बैठ। तू ऊर्ध्व श्वास ले जिससे हृदय की अग्नि में हवा लगे। पवन के डोलने से अग्नि प्रज्वलित होगी और तव काया का कलंक उसमें भस्म हो जायेगा। जब तू कष्टपूर्वक उस श्वास को पकड़े रहेगा तब सम्पूर्ण शरीर में ध्वनि होगी। उसी ध्वनि में तू निवास कर। उसी ज्योति के भीतर कैलाश है। करोड़ों में विरला ही कोई उस कैलाश को भोगता है। वह शून्य मंदिर में निवास के समान है और वहाँ निष्कंटक विलास होता है। हठयोग

---

6. रामपूजन तिवारी, सूफ़ीमत-साधना और साहित्य (वाराणसी, स. 2013 वि.), पृ. 326-27
7. श्याम मनोहर पांडेय, *सूफ़ी-काव्य-विमर्श* (आगरा, 1968), पृ. 156

की प्रक्रिया को ही मंझन ने अपने ढंग से प्रस्तुत किया है। तात्पर्य यह है कि मंझन प्रेम और ज्ञान के साथ-साथ योग को भी जीव के कल्याण के लिए आवश्यक मानते हैं।

वचन

मधुमालती के भूमिका-भाग में खिज्र खाँ नामक किसी सरदार की वीरता का वर्णन करते-करते हठात् वचन को सम्बोधित कर कवि बोलने लगता है और चौबीसवें से लेकर छब्बीसवें पद्य तक वचन के स्वरूप, महत्त्व और प्रकार्य का वर्णन करता है। कवि कहता है कि वचन अमर है; वचन उसकी चीज़ है जो सबमें विद्यमान है अर्थात् वचन ईश्वरीय है; वह रस-वार्ता कहने-सुनने का माध्यम है; सृष्टि से भी पहले वचन ने हरिमुख में अवतार लिया था; प्रथम वचन ओंकार था जो भला और बुरा होकर संसार में व्याप्त हुआ; संसार में वचन सबसे बड़ा है क्योंकि वही पशु और मनुष्य में अंतर करता है; वचन से ही वह भी (ब्रह्म) प्रकट हुआ; वचन संसार में अमूल्य नग है; वचन से ही गुरु ज्ञान देता है; जब विधाता ने चारों वेदों का निर्माण किया तो संसार में वचन प्रकट हुआ; वचन स्वर्ग से भूमि पर आया और विधाता ने ही उसे धरती पर भेजा; वचन प्रथम-प्रथम मनुष्य होकर अवतरित हुआ, फिर चारों युगों में अमर हुआ; वचन ऐसा पदार्थ है जिसका वर्णन नहीं हो सकता।

वचन का यहाँ लौकिक और अलौकिक, दोनों रूपों में परिचय दिया गया है। वचन के लौकिक महत्त्व के विषय में तो कुछ कहने की आवश्यकता ही नहीं है, इसका अलौकिक महत्त्व इसलिए है कि कुरान को ईश्वर का सच्चा वचन माना जाता है और वेद भी ब्रह्मा के मुख से निःसृत वचन ही हैं।

स्त्री

विरहाकुल मनोहर को समझाने के क्रम में महामात्य ने स्त्रियों पर टिप्पणी की है और 160वें से 163वें तक चार पद्यों में यह वर्णन है। वहाँ कहा गया है कि स्त्री संसार में किसी की न हुई ; स्त्री के प्रेम में पड़कर किसी को लाभ नहीं हुआ ; जिसने भी स्त्री से प्रेम किया उसको सेमल के सुग्गे के समान फल मिला ; स्त्री को अपनाकर किसी ने सुख नहीं पाया ; यदि स्त्री का व्यवहार अच्छा होता तो तुर्की भाषा में उसे मारु अर्थात् मारनेवाली न कहते ; स्त्री, जो औषधि रूप में व्याधि है, को कोई नहीं साध सका ; स्त्री संसार में राक्षसी के समान है ; उसे ऊपर से बनी-ठनी देखकर विश्वास न करना चाहिए ; यदि वह प्रसन्न होती है तो विरह में जलाती है और अप्रसन्न होती है तो क्षण भर में मार डालती है ; ऊपर से पूर्णिमा के समान उसकी देह होती है किंतु

भीतर से अमावस्या के समान काली होती है ; स्त्री केतकी का काँटा है ; जब उससे सुरत होती है तो काया के अंदर के प्राण को खा जाती है ; यह नहीं विश्वास करना चाहिए कि स्त्री भली है, पुरुप-भ्रमर के लिए वह केतकी की कली होती है ; जबतक वह अपना सुख प्राप्त करती रहती है तवतक वह पुरुष से अधिक जी लगाती है ; वह पुरुप से हठपूर्वक प्रेम करती है किंतु यह सब प्रेम वह अपनी गरज तक ही करती है ; चारों युगों में स्त्री अपनी नहीं रही, संसार में स्त्री का प्रेम व्यर्थ की वस्तु है ; एक पल के लिए भी यदि स्त्री की संगति की जाती है तो नारी और पुरुष सहस्र वज्रों से मरते हैं ; स्त्री संसार में किसी की नहीं हुई है ; स्त्री का जन्म ही विधाता के बायें अंग से हुआ है ; और ग्रंथ भी उसको वामा कहते हैं ; उसको जो दाहिने लाता है अर्थात् समझता है वह मूर्ख है।

स्त्रियों की निंदा में मंझन ने इतने विस्तार से कहलाया है। स्त्रियों की निंदा कोई नयी बात नहीं है। हिंदी के ज्ञानमार्गी संत कवियों और भक्तकवियों ने तो स्त्रियों की निंदा की ही है, अन्यान्य कवियों ने भी स्त्रियों की निंदा में वहुत-कुछ कहा है। रवींद्रनाथ ठाकुर ने भी कहा है :

नारीर वचने मधु, हृदयते हलाहल,
अधरे पियाय सुधा, चित्ते जाले दावानल।[8]

सुमित्रानंदन पंत ने आधुनिक नारियों को कहा है कि वह नारी नहीं है, और चाहे जो हो :

तुम सब कुछ हो, फूल, लहर, तितली, विहगी, मार्जारी,
आधुनिके, तुम नहीं अगर कुछ, नहीं सिर्फ़ तुम नारी।[9]

कलि

चर्नाढ़ी नगरी का वर्णन समाप्त करते-करते मंझन ने कलिकाल की निंदा आरम्भ कर दी है और छत्तीसवें-सैंतीसवें दो पद्यों में इसका वर्णन कर उड़तीसवें छंद में कलि से बचने की सलाह दी है। कलि का यह वर्णन बड़ा मनोरंजक है, अतः देखा जाय :

यह खोंटी कलि नागिन कारी।
त्रिभुवन मोहिनि बिरिध कुँवारी।
प्रथमैं जनमि जहां लहि आए।
ते सभ मोहि भौरे एइं खाए।

---

8. *रवीन्द्र-रचनावली,* प्रथम खंड, पृ. 2649
9. सुमित्रानंदन पंत, *ग्राम्या,* 'आधुनिका' शीर्षक कविता।

एहि कलि वारी वहुतें चाही।
बरि वरि गही न काहूं ब्याही।
एइं पापिनि सयंसार भोरावा।
लोभ बिगूचें लाभ न पावा।
असि चंचलि जनि मोहै कोई।
लाभ मूर सेउं जाइ न खोई।
सुवटा सेंवर बेगि तजु वहुत बिगूचे पंखि।
एहि पापिनि कहं सो रवै जाके हिय न अंखि।।
एहि मोहिनि जनि मोहै कोई।
लाभ न लहै मूल खति होई।
चली जाइ जिमि तार कै छाहीं।
यह रे बिटारिनि काहु कै नाहीं।
दिन पंच पंच सब सेतैं राती।
काहुं न पुनि भइ जंम अहिवाती।
जेहिं पालेसि निस्चैं तेहि मारेसि।
कौन सो जाहि उठाइ न डारेसि।
ऊंच नीच सभ के घर जाई।
पै अस्थिर कतहूं न रहाई।
मोहन रूप छिनारि करमुखी खोटी बिरिध कुमारि।
सभ सयंसार भोरइ इन्ह खावा चंचल चपल बिटारि।।

कलिकाल पर मंझन इतना बिगड़े हुए हैं कि उन्होंने उसे गाली तक दे डाली है। इससे अधिक कठोर शब्दों में कलि की निंदा नहीं हो सकती।

साहित्य के रस

जीवन और जगत् के विविध पक्षों में साहित्य का भी एक स्थान है। अतः किसी के जीवन-दर्शन पर विचार करते हुए उसके साहित्य-विषयक विचारों को भी परखा जाना चाहिए। अतएव प्रस्तुत प्रसंग में मंझन के साहित्य-विषयक विचार द्रष्टव्य हैं। इस सम्बंध में ज्ञातव्य है कि मंझन साहित्य के नौ रसों में शृंगार को रसराज मानते हैं। मंझन का कथन है :

रस अनेग सयंसार कर सुनहुं रसिक दै कान।
जो सभ रस महं राउ रस ताकर करौं बखान।।

अर्थात् हे रसिको, ध्यान देकर सुनो ! संसार में तो अनेक रस हैं किंतु जो सभी

रसों का राजा है उसका मैं वर्णन कर रहा हूँ। ऐसा कहने के पहले मंझन ने *मधुमालती* की कथा को प्रेमकथा कहा है और प्रेम शृंगार रस का विषय है, इसलिए उपर्युक्त पंक्तियों में शृंगार को ही रसराज बताना उनका अभीष्ट प्रतीत होता है।

निष्कर्षतः मंझन का जीवन-दर्शन व्यावहारिक है और वह साधक एवं सामान्य जन, दोनों के लिए एक समान उपयोगी है।

मंझन की काव्यकला

प्रबंध-विधान

मधुमालती प्रबंधकाव्य का एक भेद एकार्थकाव्य है, अतः सबसे पहले इसके प्रबंध-विधान पर विचार करके मंझन की काव्यकला को परखना उचित है। प्रबंधकाव्य के चार मुख्य तत्त्व कहे जा सकते हैं– (1) कथातत्त्व, (2) निबद्धता, (3) प्रकरणों का संयोजन और उनमें पूर्वापर सम्बंध तथा (4) वस्तु-वर्णन अथवा दृश्य-वर्णन। *मधुमालती* में **कथातत्त्व** स्पष्ट और पुष्ट है। यही नहीं, यह कथा रमणीय भी है और इसमें पाठक को रसमग्न करने की पूरी क्षमता है। लौकिक कथा के माध्यम से अलौकिक तत्त्व का संकेत *मधुमालती* का उद्देश्य है। अतः यह सामान्य पाठक को जितना आह्लादित करती है, उतना ही साधक को भी अभिभूत करती है। *मधुमालती* की कथा-योजना की यही विशिष्टता है जो प्रायः दुर्लभ होती है। इस सम्बंध में एक बड़ी बात यह है कि मंझन को अपनी ओर से यह कहने की आवश्यकता नहीं पड़ी कि लौकिक कथा के माध्यम से अलौकिक संकेत करना उनका यहाँ उद्देश्य है। अन्य कवियों को ऐसा करना पड़ा है। पर मंझन का अभिप्राय पाठक उनके बोले विना समझ लेता है। यहीं मंझन की सफलता है।

प्रबंधकाव्य का दूसरा प्रधान तत्त्व **निबद्धता** भी *मधुमालती* में अपने उत्तम रूप में है। निबद्धता का अभिप्राय है प्रधान एवं गौण कथाओं का उपकार्य-उपकारक सम्बंध से इस प्रकार ग्रथित रहना कि गौण कथाएँ प्रधान कथा की अविच्छिन्न एवं स्वाभाविक अंग प्रतीत हों। *मधुमालती* में प्रधान कथा मनोहर और मधुमालती की है एवं गौण कथा ताराचंद और पेमां की है। ये दोनों कथाएँ इस प्रकार जुड़ी हैं कि इन्हें अलग नहीं किया जा सकता। मनोहर और मधुमालती को मिलाने में पेमां की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। पेमां ही मनोहर को मधुमालती का पता बताती है, वही दूसरी बार मनोहर और मधुमालती का मिलन कराती है तथा दोनों के विवाह कराने का श्रेय भी पेमां को ही है। इसमें ताराचंद का योगदान भी अविस्मरणीय है क्योंकि वह न होता तो मधुमालती पक्षी ही बनी रह जाती। इसी तरह ताराचंद और पेमां का सम्बंध कराने

में मनोहर का योगदान महत्त्वपूर्ण है क्योंकि उसीने राक्षस से पेमां का उद्धार कर यह अधिकार प्राप्त किया था कि उसके अनुरोध पर पेमां के माता-पिता ताराचंद से अपनी पुत्री का विवाह करने के लिए तैयार हो गये। इस प्रकार ये दोनों कथाएँ अविच्छेद्य भाव से जुड़ी हैं, इसमें कोई संदेह नहीं।

प्रबंधकाव्य का तीसरा तत्त्व **प्रकरणों का संयोजन और उनमें पूर्वापरक्रम** भी *मधुमालती* में द्रष्टव्य है। *मधुमालती* में मुख्य प्रकरण छह हैं : (1) अप्सराओं द्वारा मनोहर को मधुमालती से मिलाना, (2) मनोहर द्वारा राक्षस से पेमां का उद्धार, (3) पेमां के द्वारा मनोहर और मधुमालती को मिलाना, (4) मधुमालती का पक्षी बनना, ताराचंद के पास जाना और ताराचंद के प्रयत्न से उसका उद्धार (5) मनोहर-मधुमालती का विवाह और (6) ताराचंद पेमां का विवाह। इन सारे प्रकरणों में आनुपूर्वी सम्बंध और तार्किक संगति है। न तो इनमें से कोई प्रकरण निरर्थक है, न असंगत और न किसी में अस्थानता ही है।

प्रबंधकाव्य का चौथा प्रमुख तत्त्व है **वस्तु-वर्णन** अथवा **दृश्य-वर्णन**। मंझन ने अपनी इस सूझ का उज्ज्वल प्रमाण प्रस्तुत किया है। *मधुमालती* के भाव-सौंदर्य पर विचार करते हुए मंझन की इस कला का विस्तृत परिचय दिया गया है।

इनके अतिरिक्त प्रबंधकाव्य के कुछ और तत्त्व होते हैं जो उसकी शोभा बढ़ाने में सहायक होते हैं। ऐसे तत्त्वों में **संवाद** का प्रमुख स्थान है। चूँकि प्रबंधकाव्य में अविच्छिन्न कथा-सूत्र होता है और कथा को सजीव बनाने में संवाद बहुत सहायक होते हैं, इसलिए प्रबंधकाव्य में संवाद का अपना सौंदर्य होता है। मंझन को इसकी पहचान है और उन्होंने *मधुमालती* में इसकी प्रचुर योजना की है। इस सम्बंध में सबसे पहली वात तो यह है कि *मधुमालती* के कथानक का निर्माण ही इस प्रकार हुआ है कि वह कवि और पाठक के मध्य एक संवाद प्रतीत होता है। इसकी चर्चा विषयवस्तु के प्रसंग में की जा चुकी है।

पात्रों के संवाद *मधुमालती* में प्रचुर हैं। सबसे अधिक संवाद मनोहर और मधुमालती में हुआ है। इन संवादों की विशेषता यह है कि कवि ने इनमें पूरी स्थिति को मूर्त्त कर दिया है। एक उदाहरण से इस बात को स्पष्ट किया जायेगा। मधुमालती को देख-देखकर मनोहर बार-बार मूर्च्छित हो जा रहा है। इसपर मधुमालती उससे पूछती है :

रस रस पूंछै राज दुलारी।
भै सचेत कहु बचन संभारी।
निरभौ भएं कहसि जसि बाता।
कौन भाउ कांपै तोर गाता।
मोहि कहु अपने जिय कै पीरा।

कांपै कौने भाउ सरीरा।
औ खिन खिन जिउ बिसंभर जाई।
कहहु सत्त तुम्ह पिता दोहाई।
निभरम होहु न भरमहु काहू।
कहहु कौन गुन खोइ खोइ जाहू।
सहज हेतु रस पूंछौं केइं तोर हरेउ गियान।
अमिअ छिरकि बैसारेउं समुझसि कस न अपान।।

मनोहर क्षण-क्षण मूर्च्छित हो रहा है। उसका सारा शरीर काँप रहा है। लगता है, वह बुरी तरह डर गया है। मधुमालती उसे होश में लाकर बैठाती है। उसकी दशा देखकर मधुमालती भी परेशान हो रही है क्योंकि मधुमालती समझ नहीं पा रही है कि आख़िर मनोहर की यह अवस्था क्यों है। वह बहुत आजिजी से पूछती है कि तुम्हारे पिता की दुहाई है, तुम निर्भय होकर बताओ कि किस कारण तुम काँप रहे हो और पल-पल अचेत हो रहे हो। यह सारी स्थिति उपर्युक्त संवाद में मूर्त्त हो उठी है। तात्पर्य यह है कि *मधुमालती* के संवाद बड़े स्वाभाविक, सजीव और बिम्बाधायक हैं तथा *मधुमालती* के प्रबंध-विधान को पुष्ट करते हैं।

रस-विधान

मधुमालती का अंगी रस शृंगार है और इसके दोनों भेद संयोग और वियोग यहाँ पुष्ट रूप में विद्यमान हैं। इनका विस्तृत विवेचन पीछे हो चुका है।

शृंगार के अतिरिक्त *मधुमालती* में शांत रस भी विद्यमान है। तत्त्व-ज्ञान और वैराग्य से शांत रस उत्पन्न होता है। इसका स्थायी भाव निर्वेद या शम है। अनित्यरूप संसार की असारता का ज्ञान या परमात्मा का चिंतन इसका आलम्बन होता है। ऋषि-मुनियों के आश्रम, तीर्थ-स्थान, सत्संग आदि इसके उद्दीपन होते हैं। रोमांच, संसार-भीरुता, अध्यात्म का चिंतन आदि इसके अनुभाव कहे जा सकते हैं। निर्वेद, हर्ष , स्मृति, मति आदि इसके संचारी भाव हैं।

मधुमालती के भूमिका-भाग में शांत रस द्रष्टव्य है। एक उदाहरण इस प्रकार है :

सो बसंत सयंसार न आवा।
जेइं फागुन पतझार न खावा।
ससि पूनिवं नहि उवसि अगासा।
जो रे अमावस कहं न बिनासा।
जनि भूलहु नर बुद्धि गियानी।
एहि कलि पौन कलस जस पानी।

जानि बूझि ज़नि होहु अयाने।
अंत बहुरि का फिरि पछिताने।
कलि औतरि भा अमर न कोई।
अंत हाथ पछितावा लोई।
जेहि कलि रहै न पाइय तेहि सेउं प्रीति न लाउ।
एहि जग दहगुन सेतें जनि आपुहि डहंकाऊ।।

मंझन कहते हैं कि ऐसा कोई वसंत संसार में नहीं आया जिसने फागुन की पतझड़ न देखी हो; पूर्णिमा का ऐसा कोई चंद्रमा नहीं जो अमावस्या में विनष्ट नहीं हुआ हो; ऐ ज्ञानी लोगो, अपनी बुद्धि को न भूलो, यह कलि वैसा ही है जैसा पानी के लिए पवन का कलश; जान-बूझकर अज्ञानी न बनो क्योंकि अंत में पछताकर क्या होगा; कलि में जन्म लेकर कोई अमर नहीं हुआ, अंत में लोगों को पछताना ही पड़ता है; जिस कलि में रह नहीं पाते हो उस कलि से प्रीति न लगाओ।

तत्त्वज्ञान की बात होने के कारण यहाँ शांत रस है। पद्य के आरम्भ में कहा गया है कि संसार में उत्थान और पतन, दोनों हैं। यदि वसंत है तो पतझड़ भी; पूर्णिमा है तो अमावस्या भी। इस तत्त्वज्ञान से जो मानसिक स्थिरता प्राप्त हो रही है वही यहाँ स्थायी भाव शम है। भ्रम से भरे हुए कलिकाल का ज्ञान आलम्बन है। संसार और कलिकाल के विषय में जो चिंतन है उसमें मति संचारी भाव है। इस प्रकार *मधुमालती* में शांत रस की पूर्ण छटा दिखायी पड़ती है।

अलंकार-योजना

मंझन का सबसे प्रिय अलंकार उत्प्रेक्षा है। उत्प्रेक्षा बिम्ब-रचना और प्रभाव-व्यंजना के लिए बड़ा उपयोगी है। मंझन उत्प्रेक्षा की इस उपयोगिता से परिचित हैं। इसीलिए उन्होंने रूप-वर्णन में इस अलंकार का अधिकाधिक उपयोग किया है। खोजने से उत्प्रेक्षा के सारे भेदोपभेदों के उदाहरण *मधुमालती* में मिल जायेंगे। यहाँ कुछ भेदों के उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

वाच्या उत्प्रेक्षा

गढ़ह कनैगिरि नगर सोहावा।
जनु कबिलास उतरि भुइं छावा।

कनकगिरि गढ़ की शोभा का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि मानो कैलाश पृथ्वी पर उतरकर छा गया हो। उत्प्रेक्षा-वाचक शब्द 'जनु' के कारण यहाँ वाच्या है। उपमेय कनकगिरि और उपमान कैलाश, दोनों के उल्लेख से उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा

है। यहाँ कवि ने इससे प्रभाव-व्यंजना का काम लिया है।

गम्या उत्प्रेक्षा

सूर किरिन सिर मांग सोहाई।
सभ जग जीति गगन पर आई।

मधुमालती की माँग इस प्रकार शोभित हो रही है (मानो) सूर्य की किरण हो जो सम्पूर्ण संसार को जीतकर आकाश में आयी है। उत्प्रेक्षावाचक शब्द न होने के कारण यहाँ गम्या या प्रतीयमाना उत्प्रेक्षा है। यहाँ उत्प्रेक्षा से बिम्ब की सृष्टि हो रही है। माँग का वर्ण श्वेत होता है, अतः उसके लिए सूर्य-किरण की उत्प्रेक्षा उसका चाक्षुष बिम्ब प्रस्तुत कर रही है।

हेतूत्प्रेक्षा

उत्प्रेक्षा के अन्य भेदों की अपेक्षा हेतूत्प्रेक्षा में कवि की कल्पना का चमत्कार अधिक देखने को मिलता है। मंझन की एक ऐसी उत्प्रेक्षा नीचे दी जा रही है :

कठिन हिरदै महं बिधि निरमए।
तातें कठिन सिहुन दुइ भए।

यहा मधुमालती के उरोजों का वर्णन है। दोनों स्तन कठोर हैं। उस कठोरता के हेतु (कारण) के सम्बंध में कवि उत्प्रेक्षा करता है कि कठोर हृदय में उत्पन्न होने के कारण ही ये स्तन इतने कठोर हैं। कवि की यह कल्पना निश्चय ही चमत्कृत करनेवाली है।

रूपक

मधुमालती में रूपक की भी प्रचुर योजना हुई है। रूपक वर्णन और बिम्ब-सृष्टि दोनों के लिए उपयोगी अलंकार है और कवियों का यह अत्यंत प्रिय अलंकार है। विरह-व्यथा से पीड़ित मनोहर की दशा का वर्णन करते हुए मंझन कहते हैं :

बिरह खरग कर घायल किछु नाहीं उपचार।।

यहाँ 'बिरह' (उपमेय) पर 'खरग' (उपमान) का निषेधरहित आरोप होने से रूपक अलंकार है। यहाँ उपमेय अमूर्त्त और उपमान मूर्त्त है। अमूर्त्त उपमेय के लिए मूर्त्त उपमान लाकर कवि अपने वर्णन को ठोस और बिम्बात्मक बनाता है। मंझन ने मूर्त्त और अमूर्त्त, दोनों प्रकार के उपमानों का उपयोग किया है।

यमक

यमक एक शब्दालंकार है। निरर्थक वर्णों की अथवा सार्थक होने पर भिन्न अर्थवाले

वर्णों की क्रमशः आवृत्ति को यमक कहते हैं। यह कवियों के लिए शब्द-क्रीड़ा का एक बड़ा साधन है और कवियों ने चमत्कार-सृष्टि के लिए इसका उपयोग किया है। *मधुमालती* में भी कई स्थानों पर इसकी चमत्कारपूर्ण योजना हुई है। एक उदाहरण इस प्रकार है :

निभरम चित्त अकेली बन महं रहसि निसंक।
हरि नैनी हरि बैनी हरि बदनी हरि लंक।।

यहाँ प्रथम 'हरि' का अर्थ है पीला या हरा, द्वितीय का अर्थ है कोयल या मयूर, तृतीय का अर्थ है चंद्रमा और चतुर्थ का अर्थ है सिंह। यह यमक अलंकार का सुंदर उदाहरण है।

संदेह

मंझन ने संदेह अलंकार की भी सुंदर और प्रचुर योजना की है। कुतूहल की व्यंजना करने के लिए यह अलंकार बहुत उपयोगी होता है। मंझन ने अनेक स्थलों पर इस प्रयोजन के लिए संदेह का उपयोग किया है। एक उदाहरण इस प्रकार है :

कै यह सरग अपछरा बारी।
इंद्र सराप धरनि महं डारी।
कै यह सरग बिरसपति नाऊं।
इहां आइ दिन कर बिसराउं।
कै यह है डाइनि बन केरी।
माया रूप धरेसि है फेरी।
कै यह भेस धरे बनसपति कै मेरे जिउ बौरान।
कै काहू मोहि भोरएउ कै हरेउ भूत मसान।।

राक्षस के द्वारा हरी हुई पेमां वन की चौखंडी में सोयी हुई है। उसे देखकर मनोहर को उसके विषय में सहज कुतूहल हो रहा है जिसको व्यक्त करने के लिए संदेह अलंकार से अधिक उपयुक्त कोई दूसरा साधन नहीं हो सकता था।

संसृष्टि

मंझन ने शब्दालंकारों और अर्थालंकारों की योजना तो की ही है, उभयालंकारों की भी सुंदर योजना की है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है :

सनमुख मीन केलि जनु करहीं।
कै जनु दुइ खंजन उड़ि लरहीं।

मधुमालती की आँखों का वर्णन हो रहा है। कवि कहता है कि सामने मानो मछलियाँ

क्रीड़ा कर रही हैं अथवा मानो दो खंजन उड़कर लड़ रहे हैं। यहाँ उत्प्रेक्षा और संदेह, इन दो अर्थालंकारों की संसृष्टि है। तिल-तंडुल न्याय से कई अलंकारों की स्थिति होने को संसृष्टि अलंकार कहते हैं। तिल-तंडुल न्याय से अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार तिल और चावल को मिला देने से दोनों साफ़-साफ़ दिखाई पड़ते रहते हैं उसी प्रकार मिले हुए अलंकार साफ़-साफ़ दिखायी पड़ते हैं तो वहाँ सृसंष्टि अलंकार होता है। यहाँ उत्प्रेक्षा और संदेह, दोनों स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं, अतः यहाँ संसृष्टि नामक उभयालंकार है।

खोजने से *मधुमालती* में बहुत सारे अलंकार मिल जायेंगे। पर, किसी कवि की अलंकार-योजना का महत्त्व उसके द्वारा प्रयुक्त अलंकारों की संख्या पर निर्भर नहीं है। महत्त्व की बात यह होती है कि अलंकार उक्ति को पर्याप्त कर रहे हैं या नहीं, वे सहृदय को आह्लादित करते हैं अथवा उसको मानसिक व्यायाम कराते हैं, वे काव्य की रमणीयता के हेतु हैं या उसपर लदे हुए हैं और अंतिम बात देखने की यह है कि उस अलंकार को हटा देने पर भी वहाँ कवित्व रह जायेगा अथवा नहीं। इन दृष्टियों से देखने पर मंझन की अलंकार-योजना पूर्णतया सफल कही जायेगी। मंझन ने कहीं भी अपना अलंकार-ज्ञान दिखाने के लिए अलंकार की योजना नहीं की है। सर्वत्र वे अभिव्यक्ति के क्रम में स्वाभाविक रूप में ही आ गये प्रतीत होते हैं और वे अपना औचित्य तो रखते ही हैं, वे अपरिवर्त्तनीय भी हैं।

शब्दशक्ति

जिन शक्तियों के कारण शब्द का अर्थ व्यक्त होता है उन्हें शब्दशक्ति कहते हैं। ये शक्तियाँ तीन हैं— अभिधा, लक्षणा और व्यंजना। काव्य में कवि शब्द की इन तीनों शक्तियों का उपयोग करता है। काव्य को चमत्कारपूर्ण बनाने में अलंकार के समान ये भी उपयोगी हैं। मंझन ने भी इनका उपयोग किया है। लक्षणा और व्यंजना के अनेक भेदोपभेद साहित्यशास्त्र में किये गये हैं। उनमें से अधिकांश को *मधुमालती* में खोजा जा सकता है। यहाँ एक-दो उदाहरण से इस विषय में मंझन की गति का परिचय दिया जायेगा। लक्षणा का एक उदाहरण देखने योग्य है :

उठेउ सूर जग भएउ अंजोरा।
कुंवर उठा बिरहैं झकझोरा।
चेत हरेउ जिउ गा बौराई।
कया नगर भइ बिरह दोहाई।

सूर्य उदित हुआ और संसार में प्रकाश हुआ। कुँवर विरह से झकझोरा हुआ उठा। उसकी चेतना हर ली गयी थी और उसका जी बावला हो गया था। उसकी

कायानगरी पर विरह का अधिकार हो गया।

कवि कहता है कि विरह ने कुँवर को झकझोर दिया और उसने कुँवर के शरीर-रूपी नगर पर अधिकार कर लिया। झकझोरना और अधिकार कर लेना, ये चेतन के कार्य हैं जिन्हें यहाँ विरह के द्वारा किया जाना बताया जा रहा है।। अचेतन के द्वारा चेतन का कार्य कराये जाने में मुख्यार्थ का बाध है। अतः यहाँ लक्षणा से ही यह अर्थ ग्रहण करना पड़ता है कि कुँवर विरह से व्याकुल था।

व्यंजना के अनेक भेदोपभेदों में से एक है काकुवैशिष्ट्यप्रयुक्ता आर्थी व्यंजना। मंझन ने एक स्थान पर इसका उपयोग किया है :

रतन कि सायर सायरहिं गज मुकुता गज कोई।
चंदन कि बन बन उपनै बिरह कि तन तन होइ।।

रत्न क्या प्रत्येक सागर में होते हैं ? (काकु से यह अर्थ निकलता है कि सभी सागर में रत्न नहीं पाये जाते, किसी-किसी में ही पाये जाते हैं।) ; गजमुक्ता क्या प्रत्येक गज में होता है ? (काकु से यह अर्थ लगेगा कि प्रत्येक हाथी में गजमोती नहीं होते, किसी-किसी हाथी में ही होते हैं।) ; चंदन क्या प्रत्येक वन में उत्पन्न होता है ? (काकु से यह अर्थ निकलेगा कि चंदन प्रत्येक वन में नहीं, किसी-किसी वन में उत्पन्न होता है।), विरह क्या प्रत्येक शरीर में उत्पन्न होता है ? (काकु से इसका यह अर्थ होगा कि विरह प्रत्येक शरीर में उत्पन्न नहीं होता, किसी विरले शरीर में ही उत्पन्न होता है।)।

ऊपर कोष्ठकों में काकु-उक्तियों के जो व्यंग्यार्थ दिखाये गये हैं, केवल वे ही यहाँ कवि के अभीष्ट नहीं हैं। इन चारों काकु-उक्तियों से एक व्यंग्यार्थ व्यक्त हो रहा है और वह यह है कि परमात्मा का विरह सबके शरीर में उत्पन्न नहीं होता, यह केवल उसी शरीर में उत्पन्न होता है जिसपर परमात्मा की कृपा होती है। इसी कारण यहाँ काकुवैशिष्ट्य अथवा काक्वाक्षिप्त व्यंग्य न होकर काकुवैशिष्ट्य प्रयुक्ता आर्थी व्यंजना है।

चित्र-विधान

भारतीय काव्यशास्त्र में निरूपित उपर्युक्त तत्त्वों के अतिरिक्त एक ऐसा तत्त्व है जिसकी चर्चा काव्यकला के संदर्भ में आवश्यक है। वह तत्त्व है चित्र-विधान या बिम्ब-विधान। कविता में केवल वर्णन से काम नहीं चल सकता, उसे बिम्बात्मक होना चाहिए। तात्पर्य यह है कि कविता में शब्दों के द्वारा ऐसे चित्र अथवा बिम्ब की सृष्टि होनी चाहिए जिससे सहृदय चमत्कृत हो उठें। मंझन में यह कला थी। अन्य प्रसंगों में मंझन की इस कला की ओर संकेत किया गया है। यहाँ एक उदाहरण से मंझन की इस कला

का परिचय दिया जायेगा। मनोहर और मधुमालती के मिलन का वर्णन है :

पेम भाउ दूनहु अनुसरेउ।
पर आपन भय जिय नहिं धरेउ।
कबहूं आलिंगन रस देई।
कबहूं कटाछ जीउ हरि लेई।
कबहूं नैन बान जिउ मारहिं।
कबहूं अमिअ बचन अनुसारहिं।
कबहूं सीस चरन लै लावहिं।
कबहूं आपु अपान गंवावहिं।
कबहूं नैन जीउ हरि लेहीं।
कबहूं अधर सुधानिधि देहीं।
नैन सोहागिनि बिस बसै अधरन्ह अंब्रित बासु।
नैन कटाछैं जौ मरै बिहसि जियावहिं तासु।।

मनोहर और मधुमालती प्रथम बार मिल रहे हैं। मधुमालती की रसमयी काम-चेष्टाओं का कवि ने यहाँ एक ऐसा सजीव चित्र अंकित किया है कि सारा दृश्य पाठक की मन की आँखों के सामने मूर्त्त हो उठता है। इस प्रकार यह देखा जाता है कि मंझन में चित्र-विधान की अद्भुत क्षमता थी।

निष्कर्ष-स्वरूप कहा जा सकता है कि *मधुमालती* में मंझन की काव्यकला का चमत्कार पग-पग पर द्रष्टव्य् है।

मंझन की काव्यभाषा

अलंकार

सामान्य भाषा को काव्यभाषा बनाने का मंझन का सर्वप्रमुख साधन है अलंकार। काव्यकला के प्रसंग में मंझन की अलंकार-योजना की झलक दिखायी जा चुकी है। यहाँ इतना ही कहना अलम् है कि अलंकारों से मंझन केवल भाषा की बाहरी सजावट का काम नहीं लेते। अलंकारों से मंझन अभिव्यक्ति को सटीक, सजीव और पूर्ण बनाते हैं। इसीलिए मंझन ने प्रायः उन्हीं अलंकारों की योजना की है जो अभिव्यक्ति के सच्चे साधन हैं, जो कलाबाज़ी दिखलाने के लिए नहीं हैं। कतिपय अलंकारों के अनेक सूक्ष्मातिसूक्ष्म भेदोपभेद किये गये हैं जो बाल की खाल निकालने के समान हैं। मंझन ने ऐसे अलंकारों को ग्रहण भी किया है तो उनके मुख्य भेदों से ही काम निकाला है।

शब्द-क्रीड़ा

शब्द-क्रीड़ा की प्रवृत्ति सभी कवियों में न्यूनाधिक रूप में होती है। इसीलिए डब्ल्यु. एच॰ ऑडेन ने कहा है कि वास्तविक मौलिक प्रतिभा की पहचान यह नहीं है कि कोई मौलिक कहना चाहता है बरन् इसमें है कि वह शब्दों के साथ क्रीड़ा करने में रुचि रखता है।[1] इस कथन में अत्युक्ति हो सकती है, पर इतना तो मानना ही पड़ेगा कि प्रायः सभी कवियों में यह प्रवृत्ति कुछ न कुछ और किसी न किसी प्रकार अवश्य देखी जाती है। मंझन भी इसके प्रमाण हैं। उनकी शब्द-क्रीड़ा का एक उदाहरण यहाँ दिया जा रहा है :

अंब्रित कथा कहौं अब गाई।
रसिक कान दै सुनहु सोहाई।
रस कै बात रसिक पै जानै।
बिनु रस रसिक निरस कै मानै।

1. डब्ल्यु. एच॰ ऑडेन, *द डायर्स हैंड ऐंड अदर एस्सेज* (न्युयार्क, 1962), पृ. 22

बिन रस घुन अंब्रित परिहरै।
बिन रस ऊँट उखि का करै।
जा कहं जेहि (रस) महं रस होई।
तेहि रस महं रस पावै सोई।
जो जेहि रस के जान न बाता।
सो तेहि रस अनरस उतपाता।
रस अनेग सयंसार कर सुनहुं रसिक दै कान।
जो सभ रस महं राउ रस ता कर करौं बखान।।

यहाँ 'रस' शब्द बारह बार आया है। प्रश्न है, यहाँ यमक अलंकार क्यों नहीं माना जाय। इसका उत्तर यही है कि यमक अलंकार में वर्णों की आवृत्ति लक्ष्य होती है, वहाँ कवि का ध्यान शब्द पर नहीं होता, वर्ण पर होता है। इसके विपरीत शब्द-क्रीड़ा में कवि का ध्यान शब्द पर ही होता है, वर्ण पर नहीं। वर्ण पर ही ध्यान रहने के कारण आवृत्ति न होने पर भी पुनः श्रवण में भी यमक अलंकार माना जाता है। फिर यमक भी तो एक प्रकार की शब्द-क्रीड़ा ही है। शब्द-क्रीड़ा के अनेक रूप कवियों में देखे जाते हैं, उपर्युक्त उदाहरण तो उसके एक रूप का परिचय दे रहा है। जो हो, उपर्युक्त अवतरण में मंझन ने 'रस' शब्द को लेकर क्रीड़ा की है। यहाँ 'रस' शब्द का अर्थ मूलतः एक ही है किंतु भिन्न-भिन्न संदर्भ में आने के कारण उसके प्रयोग में चमत्कार उत्पन्न हो गया है।

पारिभाषिक शब्दावली

यद्यपि किसी शास्त्रविशेष की शब्दावली का काव्य में प्रयोग अप्रतीतार्थ दोष माना जाता है तथापि मंझन ने उसका प्रचुरता के साथ उपयोग किया है। मंझन की विशेषता यह है कि वे ऐसे ही शास्त्रीय शब्दों को लेते हैं जिनका अर्थ संदर्भ से ही स्पष्ट हो जाता है। दूसरी बात यह है कि उन्होंने शास्त्रों में भी ऐसे शास्त्रों का शब्द लिया है जिनका लोकजीवन से घनिष्ठ सम्बंध है और जिनकी शब्दावली से जनसाधारण भी प्रायः परिचित रहता है, यथा आयुर्वेद, ज्योतिष आदि। इसीलिए मंझन का पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग अप्रतीतार्थ दोष की सृष्टि नहीं करता। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

मेष लगन असुनी पैसारा।
दसएं मांस ऊंच औतारा।
पचएं ससि औ सूरुज सतएं।
दसएं सुक्र बिरसपति नवएं।
दिस्टि सनीचर नखत निलारा।
दसईं राति भयउ औतारा।

यहाँ मनोहर के जन्म का वर्णन है। जन्म के समय और स्थान के अनुसार जन्म लेनेवाले व्यक्ति की ग्रह-दशा का विचार होता है। मंझन ने यहाँ ज्योतिष की शब्दावली का प्रयोग कर मनोहर के उज्ज्वल भविष्य का संकेत किया है।

इसी तरह आयुर्वेद और भारतीय कृषि-विज्ञान की पारिभाषिक शब्दावली का भी मंझन ने प्रयोग किया है।

संख्याबोधक शब्द

काव्य में शब्दों के द्वारा संख्या का बोध कराना तो बहुत प्रचलित है। प्राचीन काल के अनेक कवियों ने अपनी कृतियों का रचनाकाल इसी प्रकार बताया है। अल्पता और अधिकता की व्यंजना करने के लिए सभी भाषाओं के सभी कालों के कवि संख्याबोधक शब्दों का प्रयोग करते रहे हैं। हिन्दी के एक आधुनिक कवि रामधारी सिंह 'दिनकर' जब कहते हैं कि 'जीवन के दिन चार अवधि उससे भी अल्प जवानी की' तो 'चार दिन' से वे जीवन-अवधि की अल्पता को व्यक्त करते हैं। हिन्दी के मध्यकालीन कवि तुलसीदास जब कहते हैं कि 'भूप सहस दस एकहिं बारा' तो वे 'सहस दस' से भूपों का संख्याधिक्य व्यंजित करते हैं। अँगरेज़ी कवि वर्ड्स्वर्थ जब कहते हैं कि 'टेन थाउजेंड डैफ़ोडिल्स आइ स एट ए ग्लांस' तो वे यही कहना चाहते हैं कि बहुत अधिक डैफ़ोडिल्स् उन्होंने देखे।

मंझन ने एक अन्य प्रकार से संख्याबोधक शब्द का प्रयोग किया है :

नौ सत साजें बाला निभरम सोव सुख सेज।
चेत परिहरेउ कुंवर चित देखि हरेउ बुधि तेज।।

यहाँ सोयी हुई मधुमालती के सौंदर्य का वर्णन हो रहा है। मंझन कहते हैं कि सोलह शृंगार किये हुए वह बाला 'निभरम' सो रही थी। नौ और सात जोड़ने से सोलह होता है और शृंगार सोलह प्रकार के होते हैं, इसलिए यहाँ अर्थ निकला कि वह बाला सोलह शृंगार किये हुई थी। ऐसा प्रयोग बौद्धिक चमत्कार उत्पन्न करता है।

दो पद्यों को जोड़ना

कथा-सूत्र से तो सारे पद्य जुड़े हुए हैं ही, एक अन्य प्रकार से भी मंझन दो पद्यों को जोड़ देते हैं। वह इस प्रकार कि जिस शब्दावली से वे एक पद्य का अंत करते हैं उसी से ठीक दूसरेवाले पद्य का आरम्भ करते हैं। उदाहरणार्थ, अड़सठवें-उनहत्तरवें पद्यों को लिया जा सकता है। अड़सठवें का अंत है : '...**उदै अस्त** जेत राज' तो उनहत्तरवें का आरम्भ है : "**उदै अस्त** जहं लगि जग रेखा"। इस योजना से काव्यभाषा में प्रवाह की सृष्टि होती है।

समानांतरता

आधुनिक युग में शैलीविज्ञान ने काव्यभाषा के एक तत्त्व को रेखांकित किया है जिसे समानांतरता कहते हैं। किसी रचना में समान या विरोधी भाषिक इकाइयों का समानांतर प्रयोग समानांतरता है। इसमें भाषिक इकाई की एक अथवा अधिक आवृत्ति होती है। सदा से कविगण इसकी योजना करते रहे हैं और सचमुच काव्यभाषा के वैशिष्ट्य का यह एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। मंझन ने भी समानांतरता की योजना कई स्थलों पर की है। एक उदाहरण इस प्रकार है :

देखत खिन पहिचानां तोही।
इहै रूप जेइं छंदरा मोही।
इहै रूप तब अहेउ छपानां।
इहै रूप अब सिस्टि समानां।
इहै रूप संकती औ सीऊ।
इहै रूप त्रिभुवन कर जीऊ।
इहै रूप परगट बहु भेसा।
इहै रूप जग रांक नरेसा।

मधुमालती के अलौकिक रूप को उजागर करने के लिए 'इहै रूप' को दुहराया गया है। *मधुमालती* में समानांतरता की जितनी योजनाएँ हुई हैं, सबमें एक या दो शब्दों को दुहराया गया है।

पाठक से संवाद

ऐतिहासिक शैली में काव्यभाषा के गतिहीन हो जाने की सम्भावना रहती है। यदि उसमें इतिवृत्तात्मक कथा कही गयी है तब यह सम्भावना और अधिक हो जाती है। यह कवि की सूझ पर निर्भर है कि वह इससे कैसे बचता है। *मधुमालती* ऐतिहासिक शैली में है और इसकी कथा इतिवृत्तात्मक भी है। फिर भी, मंझन ने इसमें गतिहीनता नहीं आने दी है। इसका कारण यह है कि वे पाठक से प्रत्यक्ष संवाद करते हैं। वे पाठक को सामने करके बोलते हैं; वे अपने पाठक को साथ ले चलते हैं; वे पाठक को केवल कथा ही नहीं सुनाते, अपनी प्रतिक्रिया, अपनी अनुभूति से अवगत भी कराते चलते हैं। *मधुमालती* में यथास्थान आयी हुई निम्नांकित वाक्यावली मंझन और पाठक के बीच के संवाद को स्पष्ट करती है :

हरि हरि कहां गएउं कहं रहेउं।
का किछु कहै लिएउं का रहेउं।

कुंवर बात कहिबे मैं लई।
बीच नींदि मोहि हरि लै गई।
अब हौं पलटि कहौं सुनु बाता।
जस कुमार सुख निंद्रा मांता।

विषयांतर होने पर कथा-सूत्र को पुनः पकड़ने की सूचना कवि पाठक को दे रहा है।

देखि नितंब चिहुंटि चित लागा।
परत दिस्टि मनमथ तन जागा।
जुगल जंघ देखि मन थहराई।
भमेउ जीउ किछु कहा न जाई।

यहाँ कवि ने व्यक्तिगत अनुभूति से पाठक को अवगत कराया है।

सोवत बरनि जियहिं पछितानेउं।
कस न जगाई सिंगार बखानेउं।
अव जगाइ रस बात कहाई।
अरु रस बचन सुनत रस पाई।

यहाँ कवि अपने वर्णन से पाठक को अवगत करा रहा है।

करुना मैं न बखाना समदंत राजकुमारि।
दुवै कुंवरि जब चलिहहिं तब किछु कहब बिचारि।।

कवि पाठक को साथ ले चल रहा है।

ऐतिहासिक शैली में बीच-बीच में आयी हुई ये वाक्यावलियाँ पाठक से मंझन के प्रत्यक्ष संवाद की परिचायक हैं और काव्यभाषा का यही विधान *मधुमालती* की काव्यभाषा को गतिहीनता से बचाता है।

पारदर्शिता

काव्यभाषा और कथाभाषा को तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर दो बातें कही जा सकती हैं। प्रथम तो यह कि काव्यभाषा दर्पण के समान पाठक को उसका प्रतिबिम्ब दिखाती है और खिड़की के पारदर्शी शीशे के समान आर-पार भी दिखाती है जबकि कथाभाषा केवल दूसरा कार्य करती है। द्वितीय, काव्यभाषा अपनी ओर ध्यान खींचती है जबकि कथाभाषा प्रतिपाद्य तक पहुँचाती है। इन दोनों बातों के आलोक में *मधुमालती* की काव्यभाषा को देखने पर हम पाते हैं कि यह दर्पण के समान नहीं, खिड़की के पारदर्शी शीशे के समान है। काव्यभाषा को दर्पण के समान बताने का अभिप्राय यह है कि वह ऐसी हो, जिससे भिन्न-भिन्न पाठक भिन्न-भिन्न अभिप्राय ग्रहण कर सकें। काव्य भाषा

की इसी विशेपता के कारण विद्यापति की जिस कविता को लोग लौकिक शृंगार की कविता कहते हैं उसको रवींद्रनाथ ठाकुर ने कहा कि सम्पूर्ण वैष्णव-साहित्य में इससे अत्कृप्ट कविता नहीं लिखी गयी। यही वह विशेषता है जिससे कहा जाता है कि प्रत्येक पाठक एक ही कविता नहीं पढ़ता। अपनी इसी विशेपता के कारण काव्यभाषा अपनी ओर ध्यान खींचती है। काव्यभाषा को देखकर पाठक उसके लालित्य में खो जाता है। *मधुमालती* की काव्यभापा में कथाभाषा का गुण है। वह खिड़की के पारदर्शी शीशे के समान है। वह पाठक को प्रतिपाद्य तक पहुँचाती है। *मधुमालती* की काव्यभाषा में सचमुच पारदर्शिता है। उसमें कवि का वक्तव्य साफ़-साफ़ झलक रहा है।

निप्कर्प यह है कि मंझन की काव्यभाषा एक समर्थ कवि की काव्यभाषा है। *मधुमालती* कथा की सरसता के कारण ही नहीं, शक्तिमती काव्यभाषा के कारण भी एक उत्कृष्ट कृति है।

मंझन की बहुज्ञता

मंझन संत थे, कवि थे, साथ ही अनेक विषयों से अंतरंग परिचय भी रखते थे। वे बहुज्ञ थे। उनकी बहुज्ञता की एक झाँकी देखने योग्य है।

हिन्दू धर्म-संस्कृति

मधुमालती पढ़ते हुए इस सम्बंध में सबसे पहले इसी बात पर ध्यान जाता है कि हिंदू धर्म-संस्कृति, रीति-नीति से वे इतने परिचित थे कि सहसा विश्वास नहीं होता है कि वे मुसलमान थे। हिन्दू पुराण-कथाओं का उनको पूरा ज्ञान था। भगवान् शिव का ध्यान प्रसिद्ध है। मधुमालती के कपोलों के वर्णन के प्रसंग में कवि ने शिव के ध्यान का उल्लेख किया है :

सुर नर मुनिगन गंध्रप काहुं न रहेउ गियान।
देखि कपोल नारि कै निहचै टरै महेश धियान।।

शिव के सम्बंध में कथा है कि सती-मरण के बाद खिन्न होकर वे तपस्या में लीन हो गये। देवताओं की प्रेरणा से कामदेव ने जाकर उनका ध्यान तोड़ दिया। इसी कथा की ओर संकेत कर मंझन कहते हैं कि काम का प्रभाव ऐसा है कि शिव भी उससे हार गये :

संकर निजु जासों जग हारा।
तासों कों जग जीतै पारा।

सहदेव *महाभारत* के एक पात्र थे। वे पंच पांडवों में एक थे। उनकी विशेपता थी कि वे परम ज्ञानी थे। मंझन ने सहदेव का उल्लेख उपमान के रूप में किया है। मनोहर के पिता का एक महामात्य बड़ा ज्ञानी था जिसकी तुलना मंझन ने सहदेव से की है :

गुन सो नाउं चहूं खंड बाजा।
कलि सहदेव कहिअ तौ छाजा।

उसका गुण चारों खंडों में प्रसिद्ध था। उसको यदि कलियुग का सहदेव कहा जाय

तो यह बात शोभा दे सकती है।

कहा जाता है कि विश्वकर्मा देवताओं के शिल्पी हैं। हिन्दुओं का विश्वास है कि प्रयाग में करवत लेने से व्यक्ति पुण्यवान् और भाग्यवान् बनता है। मंझन इन बातों से परिचित थे। मधुमालती की ग्रीवा के वर्णन के प्रसंग में उन्होंने इन दोनों बातों का उल्लेख किया है :

गियं उपमा बरनौं केहि लाई।
सइं बिसकरमैं चाक फिराई।
करम रेख दहुं काहि लिलारा।
केइं पयाग दहुं करवत सारा।

अर्थात् ग्रीवा की उपमा कैसे दी जाय ! स्वयं विश्वकर्मा ने चाक चलाकर उसको गढ़ा है। किसके ललाट में ऐसी भाग्य-रेखा है, किसने प्रयाग में करवन लिया है जो मधुमालती की सुंदर ग्रीवा को गले लगायेगा ?

मंझन हिंदू-संस्कृति की छोटी-छोटी बातों से परिचित थे। भगवान् शिव को प्रसन्न करने के लिए काँवर लेकर उनको जल चढ़ाने की प्रथा है। मंझन ने एक रूपक अलंकार में उपमान के रूप में काँवर को ग्रहण किया है :

अब लै बहौं दुक्ख के कांवरि।
दुइ जग देउं सुक्ख नेउछावरि।

काँवर लेकर जाना बड़ा कष्टकर कार्य है। एक बाँस के डंडे में दोनों छोर पर गंगाजल से भरा हुआ पात्र लटकाकर उसे कंधे पर रखकर नंगे पैर पैदल जाना पड़ता है। निश्चय ही यह बड़ा कष्टकर कार्य है। इसीलिए मंझन ने दुःख के लिए इसको उपमान बनाया है।

यात्रा के समय शुभाशुभ विचार हिंदू-संस्कृति की एक विशेषता है। यात्रारम्भ के समय कुछ पदार्थों का देखना शुभ और सफलतासूचक समझा जाता है। मंझन को इसका विस्तृत ज्ञान था। उन्होंने एक स्थान पर शुभसूचक पदार्थों की लम्बी सूची प्रस्तुत की है :

बुद्धवार नौमी जब आई।
चित्रसेनि सभ कटक चलाई।
चलत सगुन भल आगें आवा।
काग मिरिग दहिनें देखरावा।
नारि आउ उर बालक लिहें।
बांभन तिलक दुवादस दिहें।
दाहिन खरहा बाएं वेसारा।

महरि सीस लै दही पुकारा।
मंछ उफरि पानी देखरावहिं।
कलस भरें तरुनी चलि आवहिं।
खेमकरी औ लोवैं दरसन आइ देखाउ।
सिद्धि होइ सभ काजहि ऐस सगुन जो पाउ।।

मनोहर की बरात जाने का वर्णन है। बरात के प्रस्थान के समय सभी शुभ शकुन हो रहे हैं।।

मंझन हिंदू धर्म के विधि-विधानों को जानते थे। हिंदू-धर्म में मरणोपरांत श्राद्ध करने का विधान है और पुत्र के द्वारा यह क्रिया की जाती है। इस क्रिया का प्रधान अंग पिंड-दान है जिसका मंझन ने एक स्थान पर उल्लेख किया है : 'सुत विनु को कत पिंडहिं देई'।

तात्पर्य यह है कि मंझन हिंदू धर्म-संस्कृति से पूर्ण परिचित थे।

ज्योतिष

मंझन को ज्योतिष का भी अच्छा ज्ञान था। पाँच-छह पद्यों में उन्होंने अपने ज्योतिष-ज्ञान का परिचय दिया है। पद्य-संख्या उनचास में मनोहर के जन्म के समय के ग्रहों की स्थिति बताकर उसके राजयोग का संकेत किया है। छंद-संख्या पचास में मनोहर के कंठ, मस्तक और पैरों की रेखाओं का परिचय देकर उसके कुलदीपक होने की भविष्यवाणी करायी गयी है। हाथ, पैर, मस्तक आदि में पड़ी हुई रेखाओं का अध्ययन सामुद्रिक शास्त्र का विषय है जिसका ज्ञान मंझन रखते थे। छंद 51 में ग्रहों की स्थिति के आधार पर मनोहर के मन में प्रेम और फिर विरह उत्पन्न होने की भविष्यवाणी करायी गयी है। हिंदू धर्मशास्त्र में यह निर्दिष्ट है कि किस कार्य के करने के लिए कौन-सा लग्न, मुहूर्त आदि उपयुक्त होता है। मंझन को इसका भी ज्ञान था। उन्होंने मनोहर के राज्याभिषेक के लिए लग्न आदि का संकेत पद्य-संख्या 61 में किया है। ग्रह-दशा के कारण किस प्रकार अनहोनी घटना घट जाती है, यह पद्य-संख्या 63 में दिखाया गया है।

अपने ज्योतिष-ज्ञान का चमत्कारी परिचय मंझन ने पद्य-संख्या 88 में दिया है। भारतीय ज्योतिष बताता है कि किन ग्रहों के कारण कोई अंग विशेष सुंदर अथवा असुंदर होता है। मंझन ने मधुमालती के दाँतों के वर्णन में अपने इस ज्ञान का परिचय दिया है। भारतीय ज्योतिष के अनुसार मंगल, शुक्र, बृहस्पति और शनि यदि एक साथ लग्न में उपस्थित हैं तो दाँतों के सौंदर्य को नष्ट करते हैं। मंझन कहते हैं कि मधुमालती नींद में ही जरा हँसती है तो उसके दाँतों की शोभा देखकर मंगल, शुक्र, बृहस्पति और शनि, ये चारों ग्रह पता नहीं, कहाँ जाकर छिप रहते हैं :

बिहरत अधर दसन चमकाने।
त्रिभुवन मुनि गन चौंधि भुलाने।
मंगर सूक गुरु सन्हि चारी।
चौक दसन भय राजकुमारी।
नहिं जानौं दहुं कहं दुरि जाई।
रहे जाइ ससि माहिं लुकाई।

ज्योतिष की बात को किस प्रकार काव्य का रूप दिया गया है, यह देखकर मन मुग्ध हो जाता है।

छंद 312-13 में प्रिय-मिलन करानेवाले ग्रहों का उल्लेख किया गया है। हिंदू धर्मशास्त्र में विवाह के लिए वर-कन्या की कुंडली मिलाने का विधान है। मंझन ने मधुमालती और मनोहर की जन्मकुंडली के मिलाये जाने का उल्लेख पद्य-संख्या 437-38 में विस्तारपूर्वक किया है। भारतीय ज्योतिष के अनुसार सर्वांगपूर्ण विवाह के संदर्भ में सभी ज्योतिषीय नियमों का विस्तृत रूप से विचार कर पालन कराया गया है। साथ ही विवाह के लिए शुभ मुहूर्त भी उसी प्रकार निर्धारित किया गया है। यह स्थल इस बात का प्रमाण है कि मंझन को भारतीय ज्योतिष का गहरा ज्ञान था।

मधुमालती में अंतिम बार पद्य 496 में मंझन के ज्योतिष-ज्ञान का परिचय है। मनोहर अपने माता-पिता के विषय में कहता है कि उन लोगों का जीवन सताइसवें नक्षत्र का चंद्रमा हो रहा है। नक्षत्रों में अंतिम नक्षत्र सत्ताइसवाँ रेवती है जो अंतिम राशि मीन का नक्षत्र है। चंद्रमा का अंतिम राशि और नक्षत्र में संचार करना जीवन-संध्या का सूचक होता है।

मधुमालती में ज्योतिष के उल्लेख के उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मंझन को भारतीय ज्योतिष का पूर्ण ज्ञान था। ज्योतिष विद्या उनके लिए इतनी सहज थी कि उन्होंने अपने काव्य में इसका रमणीय उपयोग किया है। काव्य में ज्योतिष का ऐसा उपयोग दुर्लभ है।

आयुर्वेद

मधुमालती से प्रमाणित है कि मंझन का आयुर्वेद से भी परिचय था। आयुर्वेद में रोग-निदान के लिए नाड़ी-परीक्षा का विधान है। विरह के कारण मनोहर की शारीरिक दशा बिगड़ गयी तो वैद्य को बुलाया गया जिसने उसकी नाड़ी-परीक्षा कर कहा कि उसके शरीर में कोई दोष नहीं है।

आयुर्वेद के अनुसार शरीर में, कफ, पित्त और वायु, ये तीन तत्त्व हैं जिनके प्रकुपित

होने से सारे रोग होते हैं। ताराचंद की मूर्च्छा के वर्णन में पित्त के प्रकोप की बात कही गयी है।

कृषि विज्ञान

कृषि विज्ञान का सम्बंध जनसाधारण से है। इसलिए प्रायः सबको इसका कुछ न कुछ ज्ञान रहता है। इतने विषयों का ज्ञान रखनेवाले मंझन भला इस विषय से अनभिज्ञ कैसे रह सकते थे! दो पद्यों (348, 403) में कवि ने वर्षा के नक्षत्रों का उल्लेख किया है :

नैन भरनि भरि धार जो छूटी।
सैन पूरि जनु बीर बहूटी।

अर्थात् मधुमालती के नेत्रों से भरणी नक्षत्र की जो भरी धारा छूट पड़ी तो उसकी शय्या मानो बीर बहूटी से पूरित हो गयी।

पुनः मधुमालती स्वयं अपने विरह का वर्णन करती हुई कहती है :

सिंघ मघा पावस झकझोरी।
पेम सलिल दुहुं लोयन ओरी।

अर्थात् सिंह और मघा नक्षत्र पावस में मुझे झकझोर रहे थे और मेरे नेत्रों से प्रेम का जल ओलती बनकर टपक रहा था।

संगीत

मंझन संगीत के रागों से भी परिचित थे। मनोहर के जन्मोत्सव के वर्णन में उन्होंने रागों का उल्लेख किया है :

सभ घर नगर बधावा औ सभ खोरि अनंद।
सुरस कंठ सभ गावहिं धुरवा धुरपद छंद।।

अर्थात् नगर में सभी घरों में बधावा तथा सभी गलियों में आनंद हो रहा था। सभी लोग सरस कंठ से धुरवा और ध्रुपद रागों में गान कर रहे थे।

उपर्युक्त विवेचन से मंझन की बहुज्ञता का परिचय मिलता है।

प्रेमाख्यानक-परम्परा में *मधुमालती* का स्थान

प्राचीनता की दृष्टि से मुल्ला दाऊद रचित *चंदायन* (1380 ई॰) कुबतन-कृत *मृगावती* (1503 ई॰) और जायसी-प्रणीत *पदमावत* (1540 ई॰) के बाद मंझन-रचित *मधुमालती* (1545 ई॰) का ही स्थान है। प्रसिद्धि की दृष्टि से इसका स्थान *पदमावत* के बाद ही है और काव्योत्कर्ष की दृष्टि से यह किसी से भी उन्नीस नहीं है।

प्रेमाख्यानक-परम्परा के अन्यान्य काव्यों से इसका साम्य और वैषम्य, दोनों है। पहले इसका साम्य देखा जाय। सूफ़ी प्रेमाख्यानकों में लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम को दिखाया गया है। यह बात *मधुमालती* में भी है। *मधुमालती* में वर्णित प्रेम का विवेचन करते हुए यह बात दिखायी जा चुकी है। साम्य का दूसरा बिंदु कथानक रूढ़ियाँ हैं। प्रेमाख्यानक काव्यों में उपलब्ध कथानक रूढ़ियों में से अनेक *मधुमालती* में भी द्रष्टव्य हैं। ऐसी कथानक रूढ़ियाँ हैं निर्जन वन में सुंदरी से भेंट, सुंदरी का उद्धार, सागरयात्रा, प्रिया की प्राप्ति के लिए नायक का योगी वेश धारण कर निकलना, जलयान-ध्वंस और राक्षस। मनोहर मधुमालती की खोज में योगी-वेष में ही निकला है। मनोहर ने भी सागर की यात्रा की है और उसके जलयान का ध्वंस हुआ है। जलयान-ध्वंस के पश्चात् वह दैव-योग से निर्जन वन में पहुँच गया है जहाँ उसे पेमां नामक सुंदरी से भेंट हुई है। साथ ही वहाँ उसकी राक्षस से भिड़ंत हुई है जिसे मारकर उसने पेमां का उद्धार किया है। कतिपय प्रेमाख्यानों में तंत्र-मंत्र की बात आयी है। *चंदायन* में मंत्रबल से गारुड़ी चंदा को जीवित करता है। *मृगावती* के 'पारावत भवन खंड' में यह प्रकरण आया है कि कबूतर स्त्री का रूप धारण कर लेते हैं और वे स्त्रियाँ मंत्रबल से शय्या मँगा लेती हैं। *मधुमालती* में मधुमालती को मंत्रबल से उसकी माँ पक्षी बना देती है और फिर मंत्रबल से उसे स्त्री-रूप में परिवर्तित कर देती है। ये सब *मधुमालती* और अन्य प्रेमाख्यानकों में साम्य के कुछ बिंदु हैं।

मधुमालती और अन्य प्रेमाख्यानों में साम्य की तुलना में वैषम्य की मात्रा ही अधिक है। इस वैषम्य का पहला कारण साम्प्रदायिक और दूसरा वैयक्तिक है। मंझन के गुरु शेख़ मुहम्मद गौस सूफ़ियों के शत्तारी सम्प्रदाय के थे जिनकी विचारधारा कट्टर इस्लाम से किंचित् भिन्न थी। भिन्नता का एक कारण यह था कि शत्तारी सूफ़ियों ने भारतीय

साधना की बहुत-सी वातें स्वीकार कीं। मंझन के सम्बंध में यही कहना उचित होगा कि वे इस्लाम से लगाव रखते हुए भी भारतीय धर्म-साधना के खुले समर्थक थे। यह मंझन का साम्प्रदायिक वैशिष्ट्य है जो अन्यान्य प्रेमाख्यानकों से *मधुमालती* की भिन्नता का पहला कारण है। भिन्नता का दूसरा कारण मंझन का व्यक्तित्व है। *मधुमालती* को देखकर वे एक स्वतंत्रचेता कवि के रूप में सामने आते हैं। इन्हीं दोनों कारणों से प्रेमाख्यानक-परम्परा में *मधुमालती* अपनी एक विशिष्टता रखती है।

मधुमालती में आध्यात्मिकता है, इसमें कोई संदेह नहीं किंतु उसकी सुविचारित और सुनिश्चित योजना नहीं है। इसलिए सूफ़ी दर्शन के चौखटे में उसको ठीक-ठीक नहीं बैठाया जा सकता। प्रेमाख्यानों में प्रायः देखा जाता है कि साधना-मार्ग की कठिनाइयों को दिखाने के लिए एक ऐसे पात्र की सृष्टि की जाती है जो प्रेमी-प्रेमिका के मिलन में बाधा उत्पन्न करता है, जैसे *पदमावत* में अलाउद्दीन। *मधुमालती* में ऐसा कोई पात्र नहीं है। कुछ लोग *मधुमालती* में पेमां के हरण करनेवाले राक्षस को ऐसा पात्र मानते हैं। पर सच पूछा जाय तो राक्षस वैसा पात्र नहीं है जैसा *पदमावत* का अलाउद्दीन है। यदि पेमां के स्थान पर मधुमालती राक्षस के पास बंदिनी होती तो कुछ हद तक राक्षस को शैतान का प्रतीक माना जा सकता था।

इसी तरह *मधुमालती* में ऐसा भी कोई पात्र नहीं है जिसको गुरु का प्रतीक माना जा सके, जैसे *पदमावत* में हीरामन सुआ। यहाँ मनोहर को मधुमालती से मिलाने का हेतु बनती है पेमां जो संयोगवश मनोहर को मिल जाती है। *पदमावत* में जिस प्रकार हीरामन पदमावती के रूप-गुण का वर्णन सुनाकर रत्नसेन को उसकी ओर आकृष्ट कर देता है उस प्रकार का कार्य पेमां नहीं करती। पेमां मनोहर की विरह-व्यथा सुनकर उसको सांत्वना देती है और मधुमालती से मिलाने का आश्वासन देती है। मनोहर तो मधुमालती की ओर पहले से ही आकृष्ट था। इस प्रकार गुरु जो यह कार्य करता है कि परम सत्ता की ओर व्यक्ति का ध्यान आकृष्ट कर उसे साधना-पथ पर अग्रसर कर देता है उस प्रकार का कार्य करनेवाला कोई पात्र *मधुमालती* में नहीं है।

कतिपय प्रेमाख्यानकों में कवि ने कथा के रूपकत्व की ओर संकेत कर दिया है। मंझन ने इसकी भी आवश्यकता नहीं समझी है। उन्होंने सारा कार्य वर्णन से लिया है और पाठकों की समझ पर विश्वास किया है।

एक-आध अपवाद को छोड़कर सभी प्रेमाख्यानकों में परमात्मा की प्रतीक नायिका है। मंझन ने यहाँ फिर अपनी विशिष्टता का परिचय दिया है। पीछे यह दिखाया जा चुका है कि मधुमालती (नायिका) और मनोहर (नायक), दोनों में अलौकिकता की झलक दिखायी गयी है।

अन्यान्य प्रेमाख्यानों में वर्णित प्रेम एकांतिक है। उनमें नायक-नायिका संसार की ओर से आँख मूँद लेते हैं, पारिवारिक सम्बंधों से उदासीन हो जाते हैं और नैतिक मर्यादा

का उल्लंघन करते हैं। *मधुमालती* में ऐसी बात नहीं। *मधुमालती* में नायक मनोहर में लोकभावना देखी जाती है। वह राक्षस के पास बंदिनी पड़ी पेमां को छोड़कर मधुमालती को पाने के लिए नहीं जा सका। वह ख़तरा मोल लेकर भी पेमां का उद्धार करता है। मधुमालती को अपने कुल की प्रतिष्ठा का सदा ध्यान रहता है। विवाहपूर्व मिलन में मनोहर और मधुमालती पर्याप्त संयम का परिचय देते हैं। पति-गृह जाती हुई मधुमालती को सास-श्वसुर की सेवा करने का उपदेश दिया जाता है। इस प्रकार *मधुमालती* में अलौकिक प्रेम की जैसी उज्ज्वल झाँकी दिखायी गयी है वैसा ही लौकिक प्रेम का भी आदर्श प्रस्तुत किया गया है।

अन्य प्रेमाख्यानों में विरह-वर्णन की प्रधानता है। मंझन ने यहाँ भी संतुलन बनाये रखा है। मंझन का चित्त विरह-वर्णन में जितना रमा है उतना ही संयोग-वर्णन में भी।

मानवीय चरित्र के स्वाभाविक चित्रण की दृष्टि से भी मंझन बहुत सफल कवि हैं। लौकिक दृष्टि से केवल मधुमालती को देखकर मनोहर के मूर्च्छित होने को अस्वाभाविक कहा जा सकता है। *मधुमालती* की सम्पूर्ण कथा में वैसा स्थल एक ही है और फिर उसमें सूफ़ी-साधना की भावाविष्टावस्था की झलक दिखायी गयी है। *मधुमालती* को समग्रता में देखने पर यही कहा जायेगा कि उसके पात्र मनुष्यता के सामान्य धरातल पर ही खड़े हैं।

मंझन के वस्तु-वर्णन की भी अपनी शैली है। वस्तु-वर्णन में मंझन न तो विषयांतर होते हैं, न पुनरावृत्ति करते हैं और न ब्यौरों में जाते हैं। जायसी आदि प्रेमाख्यानक-परम्परा के कवि विषयांतर होकर, पुनरावृत्ति करके और ब्यौरों में जाकर एकरसता और ऊब पैदा करते हैं। इस दृष्टि से *मधुमालती* निर्दोष है।

मधुमालती की शैली भी विशिष्ट है। इसकी कथा का न तो सर्गों में विभाजन हुआ है और न कथा के बीच-बीच में प्रसंगानुसार शीर्षक या वर्णन-संकेत ही दिये गये हैं।

सूफ़ी प्रेमाख्यानकों की रूढ़ि का हूबहू पालन मंझन ने इतना ही किया है कि *मधुमालती* के आरम्भ में ईश्वर-वंदना, मुहम्मद साहब की स्तुति, मुहम्मद साहब के चार मित्रों की प्रशंसा, शाहेवक़्त की प्रशंसा तथा गुरु की प्रशंसा को स्थान दिया है। इस अंश को छोड़ दें तो *मधुमालती* का कवि कहीं भी परम्परा सें बँधा नहीं दीखता। सबसे बड़ी बात तो यह है कि सूफ़ी-साधना का जो चरम लक्ष्य प्रेम है उसका जितना विशद एवं वस्तृत निरूपण *मधुमालती* में हुआ है उतना इस परम्परा के अन्य किसी भी काव्य में नहीं हुआ। स्पष्ट है कि सूफ़ी-परम्परा में स्थान ग्रहण करके भी मंझन ने अपनी विशिष्टता और मौलिकता अक्षुण्ण रखी है।

मंझन केवल अपनी परम्परा के कवियों में ही उच्च स्थान के अधिकारी नहीं अपितु हिन्दी-काव्य-जगत् के भी वे एक अमूल्य रत्न हैं।